योगासन, प्राणायाम तथा सूर्यनमस्कार

लेखक—
महामण्डलेश्वर
स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती

योगासन प्राणायाम

तथा

सूर्यनमस्कार

लेखक—

ब्रह्मलीन, श्रीमत्परमहंस—परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ

महामण्डलेश्वर—

श्रीस्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

पंचमबार
३०००

सम्वत्
२०३२

मूल्य
२) रु०

विषय-सूची

ब्रह्मलीन, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, महामण्डलेश्वर—
परमपूज्य श्री स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

प्राक्कथन

इस संसार यात्रा में जीव रूपी पथिक को परमार्थ की प्रमुख साधनभूत शरीर को निरोग बनाते हुए तथा सुगमता से भव रोग से छुड़ाकर श्री हरि से संयोग करा देने वाला योग के समान अन्य कोई साधन नहीं है। ईश्वर प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा रखने वाले सुयोग्य साधक भी केवल शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपने साधन में निरन्तर अग्रसर नहीं हो पाते है। इसीलिये महर्षि पतञ्जलि ने मानव मात्र के कल्याणार्थ अपने परम प्रसिद्ध ग्रन्थ "योग-दर्शन" में अष्टाङ्ग योग का सविधि वर्णन किया है। अष्टाङ्ग योग में यम-नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि* के अन्तर्गत आसन का स्थान क्रमशः तृतीय संख्या पर आता है। योग की पूर्ण सिद्धि के लिये प्रथम यम से लेकर समाधि पर्यन्त क्रमशः प्रत्येक अङ्ग का साधन अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त अष्टाङ्ग योग के प्रत्येक अङ्ग का पृथक् पृथक् रूप से भी प्रयोग करके सहस्रों व्यक्तियों ने लाभ उठाया है और अब भी उठा रहे हैं।

---

* योग सम्बन्धी अन्य कई गवेषणा पूर्ण बातें आपको श्री स्वामी सनातनदेव जी रचित "योग रसायन" में मिलेंगी जो प्रकाशन विभाग मुमुक्षु आश्रम से प्राप्त हो सकती है।

योग के तृतीय अङ्ग "आसन" से सर्व-साधारण यथाशक्ति लाभ उठा सकें, इस भावना से प्रेरित होकर यह योगासन और सूर्य नमस्कार नाम की छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तक में कथित प्रत्येक आसन की विधि अनेक व्यक्तियों पर प्रयोग करने के पश्चात् अंकित की गयी है। प्रत्येक आसन का प्रभाव शरीर पर आश्चर्य जनक होता है। वर्षों के रोगी व्यक्ति-विधि पूर्वक नियम से आसनों का अभ्यास करने से रोग-मुक्त होकर स्वस्थ बन गये हैं। आसनों का अभ्यास प्रारम्भ करने वाले व्यक्ति को प्रथम आसन लगाने की शुद्ध रीति सीखनी चाहिये। तत्पश्चात् शुद्ध आहार-विहार तथा नियमानुवर्तिता की आवश्यकता है। ऐसा करने से साधकों को पूर्ण लाभ प्राप्त होगा। आये दिन वैद्यों और डाक्टरों की दासता से मुक्ति मिल जायगी। नियमानुकूल शुद्ध आहार-विहार सहित आसनों का अभ्यास करके प्रत्येक नर-नारी सुगमता पूर्वक पूर्ण स्वस्थता प्राप्त करते हुए सहज ही मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकें ऐसी हार्दिक कामना है। भगवान् सबको शक्ति प्रदान करें।

—स्वामी शुकदेवानन्द

पवित्र संकल्प

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।"

यह मनुष्य श्रद्धारूप ही है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह मनुष्य बनता है। श्रद्धा के आधार पर ही विश्वास की उपलब्धि होती है। आत्मा, परमात्मा, धर्म पुरुषार्थ आदि पर विश्वास रखना आवश्यक है; इससे बड़ा लाभ होता है। विश्वास का फल बड़ा है, परन्तु अंध विश्वास नहीं चाहिये।

अपने अन्दर "शुभ-संकल्प" बढ़ाने चाहिये। शिव-संकल्प करने से कदापि पतन नहीं हो सकता। पवित्र संकल्प ही मानव को ऊपर उठाने का मूल कारण है। यह बात सिद्ध है कि हीन विचारों से अवस्था भी हीन बनती है और उच्च विचार होने से ही मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुँचता है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।"

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता का वास्तविक कारण मनुष्य का मन ही है। बाह्य कारणों से कभी कोई वैसा परतन्त्र नहीं बन सकता। जैसा अपने मन के कारण बन सकता है। ब्रह्मचर्य का संरक्षण भी मन के विचारों पर ही अवलम्बित है। मन में पवित्र विचार रहें तो ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकती है और मन में

हीन विचारों का आधिक्य हुआ, तो ब्रह्मचर्य का नाश अवश्यं-भावी है। इसलिये अपने विचार पवित्र करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अपने विचारों का निरीक्षण और परीक्षण प्रतिदिन करते रहिये और जिस समय बुरा भाव मन में आजाय, उसी समय उसको अपने उत्तम विचारों से दूर कीजिये। अपने विषय में संशय न रखिये; पक्का आत्म विश्वास रखिये कि मैं अपने विचार अवश्य ही उच्च करूँगा और उच्च बनूँगा। अपने विचारों का यदि आप ऐसा निरीक्षण करेंगे, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करेंगे श्रेष्ठ पुरुषों की संगति करेंगे, तो निःसंदेह आप भी एक दिन श्रेष्ठ बन जायँगे। इच्छाशक्ति ही मानव का निर्माण करती है।

प्रातःकाल उठते ही मंगलमय परमात्मा का ध्यान कीजिये और उसे अपने हृदय में विराजमान देखिये। प्रातः से ही अपने अन्दर प्रसन्नता, शान्ति आनन्द और उत्साह आदि गुण धारण कीजिये, यदि आप दृढ़ प्रयत्न करेंगे, तो आपका स्वभाव भी अत्यन्त मधुर बन जायगा और कष्ट के समय में भी आपका मुख प्रफुल्लित रहेगा। अतएव अपने उत्थान के लिये शुभ संकल्प व्रता बनने का निश्चय कीजिये।

भोजन के समय क्रोधादि विकारों को दूर रखिये। यदि आपको क्रोध आया है, तो उस समय भोजन न कीजिये। भोजन के समय आनन्द, उत्साह और शान्ति से युक्त मन

चाहिये। क्रोधादि दुष्ट विकारों के समय किये हुए भोजन का पाचन ठीक नहीं होता और वह अनेक रोग उत्पन्न करता है क्रोधी मनुष्य अल्पायु होता है, इसलिये क्रोधादि शत्रुओं को अपने पास आने नहीं देना चाहिये। यदि आप प्रयत्न करेंगे, तो निःसन्देह आप एक मास में अपना स्वभाव बदल सकते हैं, प्रयत्न करके देखिये। आन्तरिक प्रसन्नता रहने से ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकती है। क्रोधादि विकारों के कारण वीर्य नाश होना सम्भव है।

सोने के समय तो अवश्य ही शुभ विचारों के साथ सोना चाहिये। क्योंकि जो विचार निद्रा के आरम्भ में रहेंगे वे ही निद्रा की समाप्ति तक रहते हैं, इसलिये सोते समय बुरे विचारों का अवश्य तिलांजलि दे देनी चाहिये। सोने के समय आरोग्य पूर्ण और दृढ़ विचार मन में रखिये, सर्वशक्तिमान परमात्मा का स्मरण करते-करते सो जाइये। दृढ़ विश्वास रखिये कि स्वप्नदोष आदि मुझे कदापि सतायेंगे ही नहीं और मैं पूर्ण निरोगी और बलवान अवश्य बनूँगा। जैसे आपके विचार होंगे, वैसा ही आपको अनुभव भी होगा। आपका मन ऐसी अपार शक्ति रखता है कि यदि आप पूर्ण निश्चय करें कि मैं ४॥ बजे के समय उठूँगा तो निसन्देह घड़ी न देखते हुए भी ठीक ४॥ बजे के समय आपकी आँख खुलेगी। इतना प्रभावशाली मन आपके पास है; इसलिये आप निर्भय होकर धैर्य से अपने सुधार का उपाय करें। तात्पर्य यह है कि

ब्रह्मचर्यादि का साधन करने के लिये सद्विचारों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिये वेद कहता है कि:—

ॐ भद्रं कर्णेभिःशृणुयाम देवाः, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

हे देवो! कानों से अच्छे कल्याणमय विचार सुनेंगे, आँखों से अच्छे पदार्थ देखेंगे और दृढ़ अवयवों से युक्त बलवान शरीर से अपनी आयु की समाप्ति तक हम अपने श्रेष्ठों का हित ही करेंगे। तात्पर्य यह कि हम अपनी समस्त इन्द्रियों को अत्यन्त शुभ कर्मों में लगायें और अपना "वायुमंडल" पवित्र, शुद्ध, शुभ, और मंगलमय बना कर अपना अभीष्ट सिद्ध करें। अपने आपको आत्म-स्वरूप शरीर से भिन्न और शरीर का संचालक समझ कर अपने अधिकार की भावना को सदा जीवन और जागृति का सन्देश देते रहिये। इस प्रक्रिया से अनायास ब्रह्मचर्य का पालन पूर्ण रूपेण हो सकता है।

मातृ भाव की दृष्टि

स्व स्त्री को छोड़ कर अन्य स्त्रियों की ओर वासना रहित होकर जो पवित्र दृष्टि होती है, वह धार्मिक दृष्टि कहलाती है, छोटी आयु वाली स्त्री को देखने के समय "पुत्री भाव की दृष्टि" धारण करनी चाहिये। अपने समान आयु वाली स्त्री को देखते समय "बहिन की भावना" बनानी चाहिये तथा अपने से बड़ी आयु वाली स्त्री की ओर देखने के समय 'मातृ भाव की दृष्टि' धारण करनी चाहिये, यही धर्म है। "पर स्त्री मातु समान" समझना चाहिये। अन्य भावनाएँ बनाना सर्वथा अनुचित है। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना है, तो इन पवित्र भावों का अवलम्बन अत्यन्त आवश्यक है जो पूर्ण ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं वे स्त्री की ओर दृष्टिक्षेप नहीं करते यदि किसी समय देखना ही पड़े तो उस स्त्री को माता समझ कर ही देखते हैं। इससे ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार के भाव स्त्रियों को पुरुषों के विषय में भी करना चाहिये। अर्थात अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुषों की ओर देखने के समय अवस्था के अनुकूल 'पितृ-भाव, भ्रातृ-भाव अथवा पुत्र भाव की दृष्टि धारण करके ही देखना चाहिये। इस प्रकार स्त्री-पुरुष परस्पर व्यवहार करने लगें तो श्रेष्ठ और पवित्र वायु मंडल शीघ्र बन सकता है। प्रत्येक स्त्री राष्ट्र की माता है इसलिये मातृ-दृष्टि से स्त्रियों की ओर देखना

राष्ट्र की सच्ची सेवा है। जब इस प्रकार पवित्र दृष्टि बनेगी, तब विचार और आचार भी पवित्र बन सकते हैं।

कुदृष्टि-त्याग

बुरे दृश्यों की ओर नहीं देखना चाहिये। पशु पक्षियों के बुरे व्यवहार और अश्लील आचार रास्तों पर भी होते रहते हैं। आने जाने के समय मनुष्य की दृष्टि के सम्मुख ऐसे बुरे दृश्य आ जाते हैं। ऐसी अवस्था में उसको उचित है कि वह अपनी दृष्टि को वहाँ से हटाकर अन्य शुभ पदार्थों की ओर स्थिर करे और उस पदार्थ का ही विचार करे। फूल, फल, वृक्ष पर्वत, नदी आदि पर अपनी दृष्टि रखे और बुरे दृश्य पर अपनी दृष्टि न रखे। ऐसा करने से बुरे दृश्य का परिणाम नहीं होगा। स्त्री पुरुषों के अंगों की ओर कुभावना से देखना उचित नहीं है। तात्पर्य यह कि किसी समय अपनी दृष्टि ऐसे बुरे दृश्य पर न डाल कर सदा शुभ तथा पवित्र दृश्य ही दृष्टि के सामने रहें। ऐसा करने से बहुत से दोष निर्मल हो जाते हैं।

सादा रहन सहन

ब्रह्मचर्य रक्षण के निमित्त मन की पवित्रता के साथ ही शरीर और वाणी भी पवित्र रखनी आवश्यक है। कायिक वाचिक और मानसिक पवित्रता ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है। सादा रहन-सहन और ऊँचे विचार आवश्यक हैं। खाने-पीने में, कपड़े लत्ते में विलासिता की प्रवृत्ति से बड़ी हानि होती है। कपड़े बिलकुल सादे, विशेषतया अपने हाथ के सूत के बने हुए हों, तो बहुत ही अच्छा होगा—खाने पीने के पदार्थ भी पवित्र, स्वच्छ और पौष्टिक हों; परन्तु चटपटे न हों। बिलकुल साधारण दाल रोटी सबसे अच्छी है। शरीर, वचन और मन में सादगी ही महापुरुषों का लक्षण है। सीधा सादा रहन-सहन और भोग विलास से दूर रहना यही ब्रह्मचर्य का साधन है।

सत्संगति

"दूसरों के पाप, ताप दीनता का नाश सज्जन अपने उपदेश से ही करते हैं।" इसलिये सज्जनों की संगति में ही रहना चाहिये। जैसी संगति होती है, वैसा ही मनुष्य बनता है यह निर्विवाद सिद्धान्त है। इसलिये किसी को अपना मित्र बनाने के पहिले अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। बुरे मित्रों की कुसंगति के कारण बड़े-बड़े पुरुष भी नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं और सज्जनों की सत्संगति से नीच मनुष्यों का भी उद्धार हुआ है; ऐसी अनेक घटनाएँ अपने इतिहास में मिलती हैं। विशेषतः ब्रह्मचर्य के पालन करने के लिये सज्जनों की संगति तो अवश्य ही चाहिये, क्योंकि ब्रह्मचर्य भ्रष्ट होने का मूल कारण पतित मित्रों की कुत्सित सगति ही है।

आजकल गन्दे तमाशे, शृङ्गार पूर्ण नाटक वीभत्स दृश्य और सिनेमा के अश्लील चलचित्रों का प्रचार तेजी से हो रहा है। कामोद्दीपक घृणित उपन्यास और कहानियाँ हमारे नवयुवक बड़े चाव से पढ़ते हैं। दुःख की बात तो यह है कि ऐसे कुरुचि-पूर्ण साहित्य के लिये कोई प्रतिबन्ध भी नहीं। ऐसी पुस्तकें खुले आम बाजारों में मिलती हैं। देखने-सुनने अथवा पढ़ने-पढ़ाने से ही चरित्र का उत्थान अथवा पतन हो जाता है।

इस युग में ब्रह्मचर्य का प्रश्न प्रतिदिन अत्यन्त दुरूह होता जा रहा है, परन्तु हमारे राष्ट्र के भावी कर्णधार, नवयुवक

सचेत होकर स्वयं अपना रक्षण करेंगे तभी देश का यथार्थ उत्थान हो सकेगा।

मित्र तो ऐसा होना चाहिये जिससे आप अपने हृदय की आन्तरिक बात भी निस्संकोच कह सकें और उस मित्र को ऐसा चरित्रवान होना चाहिये जो अपने व्यावहारिक उपदेशों से गिरते हुए मित्र को ऊपर उठाले। वस्तुतः ऐसे मित्रों का इस युग में अभाव सा ही है; किन्तु हताश न होकर ऐसे मित्र की तलाश करनी चाहिये। आज देश को ऐसे ही सदाचारी पुरुषों की आवश्यकता है, जो स्वयं उन्नत बन कर अपने मित्र को उन्नतिशील बनावें। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये यह एक आवश्यक प्रयोग है।

स्वाध्याय

जिन ग्रन्थों के पढ़ने से सद्विचारों की जागृति होती है, बुरे विचार नष्ट होजाते हैं और शुभ संकल्प बनते हैं, वे ग्रन्थ ही सद्ग्रन्थ होते हैं। ऐसे ग्रंथ ही पढ़ने चाहिये जिनमें अश्लील और दुराचार की कथाएँ नहीं हैं, श्रेष्ठ आचार-विचारों का ही जिनमें कथन है। जिनके पढ़ने से पाठक श्रेष्ठ आत्मविश्वास से सम्पन्न होजाता है ऐसे ग्रन्थ ही पढ़ने चाहिये। प्रतिदिन स्नान-संध्या करने के पश्चात् श्रेष्ठ धर्मग्रंथ का पाठ कीजिये और जो पवित्र विचार आप पढ़ें, उसको विचार पूर्वक अपनाने का अभ्यास अवश्य कीजिये। ऐसा कभी न हो कि आप कोई ग्रंथ

पढ़ें और उसको पढ़ने के पश्चात बिलकुल भूल जायँ। ऐसा करने से वह समय तथा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। इसलिये पढ़े हुए सद्ग्रन्थों का मनन करके उनके अनुसार आचरण करने का सतत प्रयत्न करते रहिये।

साधु, संत, महात्मा, लोकोत्तर सदाचारी सत्पुरुष आदि के बोध-वचन स्मरण रखिये। वेद के पवित्र मन्त्र, उपनिषद् की श्रेष्ठ श्रुति तथा अन्य सद्विचार के सारभूत वाक्य आप सदैव अपनी स्मृति में रखिये। ऐसे निरन्तर सदभ्यास से आपके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन निस्सदेह हो जायगा।

शीतोदक-स्नान

गरम जल के स्नान से ब्रह्मचर्य का पालन होना कठिन है। इसलिये ब्रह्मचर्य पालन के लिये ताजे ठण्डे जल से स्नान करना चाहिये। शरीर के रोगी होने पर तो बात दूसरी है। स्वस्थ शरीर में तो सदैव ठण्डे जल का स्नान ही विशेष लाभदायक हो सकता है। जिसको स्वप्न-दोष होते हों, यदि वह नित्य ब्राह्ममुहूत में शीत जल से स्नान करेगा, तो उसका स्वप्न-दोष दूर होगा। आवश्यकता होने पर दिन में दो अथवा तीन बार स्नान करने में भी कोई हानि नहीं है, यह बात अपने स्वास्थ्य के अनुसार होनी चाहिये। किसी कारण से यदि शीत जल का स्नान नहीं होता, तो उपस्थ प्रदेश को ठण्डे जल से दो तीन बार

अवश्य भली भाँति धोना चाहिये, इससे बहुत लाभ होता है। सब ऋतुओं में कुएँ के पानी का स्नान उत्तम है। कुएँ का जल ताजा शीतल और अधिक होना चाहिये। थोड़े से जल से स्नान करने से कोई लाभ नहीं। पूर्ण-अङ्ग-प्रत्यंग को जल से अच्छी प्रकार धोना आवश्यक है। जो भाग अच्छी प्रकार धोया नहीं जाता वह दुर्बल रहता है और वहाँ पर रोग आकर बसता है। ग्रीष्मकाल में दो बार स्नान के अभ्यास से अधिक लाभ होता है। शरीर कभी गन्दा न रखिये। जहाँ मल रहता है, वहाँ उष्णता बढ़ती है और बीमारी बढ़ जाती है। नदी, तालाब और समुद्र का स्नान क्रमशःउत्तमोत्तम है। तैरने का अभ्यास कीजिये, जल में बहुत तैरने वाले को ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है। स्नान करने के स्थान में स्वच्छ वायु और प्रकाश होना चाहिये। भोजन के तीन घण्टे पूर्व स्नान करना चाहिये। बीच में यदि इतना समय न रखेंगे तो पाचन क्रिया बिगड़ जायगी। जो स्वप्नदोष से पीड़ित हैं, उन्हें चाहिये कि वे सोने के पूर्व मस्तक, हाथ और पाँव को ठण्डे पानी से भली प्रकार धोवें, इसके पश्चात उत्तम स्वच्छ कपड़े से उनको पोंछ दें तथा छाती, कमर तथा गुप्ताङ्गों को जल से अथवा गीले कपड़े से स्वच्छ करें। ऐसा करने से निःसन्देह स्वप्नदोष हट जाता है। स्वप्नदोष का एक कारण मलावरोध भी है। इसीलिये शीतल जल के साथ स्नान करने के समय पेट का अच्छी प्रकार मर्दन करने से शौच साफ होने लगता है। स्वप्नदोष से मुक्ति पाने के लिये पेड़ू साफ रखना अत्यन्त आवश्यक है।

अल्पाहार

अधिक भोजन करने से वीर्य में विकार हो जाता है, विशेषतः रात्रि का भोजन परिमित ही करना चाहिये। अति भोजन से अनेक रोग हो जाते हैं। अजीर्ण होने का कारण अति भोजन ही है। बहुत भोजन करने वाला और दिन भर खाते रहने वाला मनुष्य कदापि ब्रह्मचारी नहीं रह सकता।

हितकारक और पथ्यकार अन्न परिमित परिमाण में खाना चाहिये। कितना भोजन करना चाहिये, यह बात भली भाँति समझकर अपने भोजन का परिमाण निश्चित करना चाहिये। वास्तव में पेट के दो भाग अन्न से, एक भाग जल से, शेष भाग वायुसंचार के लिये खाली रखना चाहिये। दिन में केवल दो बार अन्न खाना चाहिये। इससे अधिक खाना उचित नहीं। रसनेन्द्रिय का संयम करने से आरोग्य की वृद्धि होती है और ब्रह्मचर्य का पालन भी हो जाता है। भोजन में बहुत पदार्थ न हों; यदि पदार्थ कम होंगे तो पाचन-क्रिया में सरलता रहेगी।

जितना अन्न मनुष्य खाता है, उसका तीसरा भाग भी नहीं पचता। इसलिये अपचित भाव का आँव बनता है और वह वीर्य में विकार उत्पन्न करता है। अतएव भोजन सादा, अल्प, स्निग्ध, रसयुक्त, मधुर और प्रिय हो; आनन्द के साथ भोजन किया जाय तो लाभदायक होता है। गेहूँ, चावल, चना, बाजरा

ज्वार, जौ, अरहर, मूँग, दूध, दधि, घी, मक्खन, मीठा, काली-मिर्च, सकरकंद, ताजे और उत्तम रसयुक्त फल, इत्यादि पदार्थ सात्विक भोजन में आते हैं। गर्म मसाले आदि तीक्ष्ण, रुक्ष, और दाह करने वाले राजसिक होते हैं और ये रोग उत्पन्न, करते हैं। जो अधिक समय के बने सड़े हुए पदार्थ हैं, वे तामस होते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करने वाले को केवल सात्विक भोजन ही करना उचित है। मद्य मांस का सेवन करना अत्यन्त हानिकर है। इस विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है क्योंकि सब लोग इस बात को भलीभाँति जानते ही हैं। प्राकृतिक नियमानुसार पदार्थों का स्वाभाविक स्थिति में सेवन करना उत्तम है। आवश्यकता से अधिक पदार्थों का सेवन अनुचित है। कंद, मूल, फल और दूध अच्छा है। साबित गेहूँ और दलिया अच्छा है। मैदा बहुत बुरा है क्योंकि यह मेदे में चिपक कर पाचन क्रिया विगाड़ देता है।

केवल दो बार ही भोजन करना उत्तम है। रात्रि में भोजन न करने से स्वप्नदोष लगभग दूर हो जाता है। आवश्यकता होने पर थोड़ा सा दूध लेना किंवा अल्पाहार करना चाहिये। जो एक समय भोजन करता है वह सदा रोग मुक्त होता है अथवा उसे बहुत कम रोग होते हैं। अन्न अच्छी प्रकार चबाकर खाना चाहिये। भोजन के पश्चात् एक घंटा मानसिक अथवा शारीरिक श्रम करना उचित नहीं तथा अति श्रम करने के बाद तुरन्त भोजन करना भी ठीक नहीं। भोजन के पूर्व, पश्चात् और बीच

में शुभ विचार ही मन में रखना चाहिये। क्रोध, लोभ और भय आदि से शरीर में विष उत्पन्न होता है। भोजन के समय जल न पीना उत्तम है। भोजन के एक घण्टे पश्चात जल लाभदायक है। भोजन में पकौड़े और चटपटे पदार्थ उपयोगी नहीं हैं; चाय, काफी, मिठाई, खटाई सब त्याज्य हैं। नियमित समय पर भोजन करना चाहिये और अन्य समय कुछ भी न खाना अत्यन्त उत्तम है। चलते हुए अथवा लेटकर भोजन करना हानिकर है। भोजन के समय स्वच्छ वस्त्र पहनना उत्तम है। भोजन के पूर्व नाखून और हाथ स्वच्छ करना आवश्यक है। नाखूनों में जो मल रहता है, वह बड़ा विष रूप है, वह विष पेट में जाकर विविध रोग उत्पन्न करता है। भोजन के पूर्व हाथ पाँव धोकर साफ कीजिये तथा आँख, नाक आदि इन्द्रियों को अच्छी प्रकार जल से धो डालिये और जिह्वा खूब साफ कीजिये। भोजन के पश्चात् भी अच्छी प्रकार मुख की स्वच्छता करनी आवश्यक है। प्रातःकाल कुछ भी नहीं खाना चाहिये। शौच से निवृत्त होते ही अन्न खाना हानिकारक है। भोजनोत्तर टहलना लाभदायक है। पश्चात् किंचित विश्राम करना भी अनुचित नहीं। भोजन का स्थान स्वच्छ हवा और प्रकाश युक्त तथा उत्तम आरोग्यदायक हो।

पीने योग्य जल वह होता है कि जो स्वच्छ, निर्गन्ध और शीत होता है जो सूर्य के प्रकाश से पवित्र हुआ है। दिन रात्रि में दो तीन सेर पानी पीना चाहिये।

ऋतुकाल के अनुकूल जल न्यूनाधिक करना भी आवश्यक है। जल कम पीने वालों को कोष्ठ-बद्धता होती है। जल छानकर पीना चाहिये और छन्नी प्रतिदिन स्वच्छ रखनी चाहिये। जल भी थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। प्यास लगने के पश्चात पानी पीना उत्तम है। बर्फ, सोडा, लेमनेड आदि पेय आँतों को खराब करते हैं। सोने के पूर्व थोड़ा जलपीना आवश्यक हो तो पीजिये। प्रातः जागते ही "उषः पान" करने से शौच साफ होजाता है। ताँबे के पात्र में रखा हुआ जल पीने के लिये अच्छा होता है। इस प्रकार नियमित खान-पान करने से स्वप्नदोष भी दूर हो जाता है।

उपवास

अजीर्ण से शरीर में अनेक रोग होते हैं। अजीर्ण को नाश करने का उपाय औषधि सेवन नहीं है। उपवास उसका सर्वोत्तम उपाय है। औषधि सेवन करने से वीर्य-दोष होते हैं; परन्तु उपवास से वीर्य-दोष न्यून होते हैं। उपवास से न केवल शरीर शुद्ध होता है, प्रत्युत मन भी पवित्र होजाता है। उपवास करने के समय शुद्ध जल जितना आवश्यक हो, उतना पीना चाहिये। आवश्यकता होने पर उपवास करने से उदर विकार नष्ट हो जाते हैं। यदि भूखे रहने में अशक्य हों, तो फलों का रस पीना उत्तम है; परन्तु वह भी अत्यन्त अल्प। अपचित भोजन पेट से दूर करना और इस उपाय से स्वप्नदोष हटाना उपवास से ही सिद्ध होता है। अन्य उपाय इससे नीचे हैं। उपवास के पश्चात दुग्धाहार तथा अत्यन्त सुपच अल्प भोजन करना ही ठीक है।

दो बार शौच जाना

शौच का अवरोध करने से वीर्य पतला होकर नष्ट होता है। इसलिये मल-मूत्र विसर्जन करने की आवश्यकता हो तो उसे कदापि नहीं रोकना चाहिये। मलमूत्र के वेग को दबाना कदापि योग्य नहीं। ऐसा नियम बनाना चाहिये कि दो बार ही मलमूत्र विसर्सन करना पड़े। बारम्बार शौच जाना भी हानिकारक है। बल से शौच की प्रवृत्ति बढ़ाने से बवासीर होजाती है। सवेरे शौच के पूर्व शीत अथवा उष्ण जल थोड़े नमक के साथ पीने और पेट की मालिश करने से सब प्रकार की कबज आठ दिन में निस्संदेह दूर होजाता है। पतला अथवा सख्त शौच ठीक नहीं। शौच में देर भी नहीं लगनी चाहिये। शौच के समय आवाज होना भी बुरा है, काम विकार उत्पन्न होने लगे तो मलमूत्र विसर्जन कीजिये और शीतल जल से सब गुह्य प्रदेश स्वच्छ कीजिये। ऐसा करने से बड़ा लाभ होगा।

जननेन्द्रिय का स्नान

जननेन्द्रिय शीतल जल से धो कर उसको अच्छी प्रकार शीतल करने से शरीर और मन शान्त होजाता है और स्वप्न दोष का विकार नष्ट होता है। प्रत्येक बार मूत्र करने के समय शिस्न को अच्छी प्रकार धोकर शीतल कीजिये। शौच के बाद में भी बहुत जल का उपयोग करके दोनों द्वारों को निर्मल करना चाहिये। अन्य समय जननेन्द्रिय को स्पर्श करना नहीं चाहिये तथा धोने के समय भी घर्षण करना कदापि उचित नहीं है।

जल्दी सोना, जल्दी उठना

रात्रि में ६॥ बजे तक सोजाना और प्रातःकाल ४ बजे उठना अत्यन्त लाभदायक है। इसमें थोड़ा न्यूनाधिक भी कर सकते हैं। चार बजे उठने के पश्चात् फिर सोना उचित नहीं है।

निर्व्यसनता

चाय, काफी, सिगरेट, तम्बाकू मद्य आदि सभी दुर्व्यसन हैं। प्रत्येक दुर्व्यसन ब्रह्मचर्य का घातक है। इसलिये हर प्रकार से अपने को स्वच्छ निर्मल ही रखना अत्युत्तम है। चाय, काफी आदि के प्रयोग से कोष्ट बद्धता होती है तथा इतर व्यसनों से रक्त-दोष बढ़ते हैं। इसलिये श्रेष्ठ बनने वालों को उचित है कि वे कदापि किसी भी दुष्ट व्यसन में न फँसे।

एकान्त त्याग

जो तरुण वीर्य दोष से दुखी हैं, वे कभी एकान्त सेवन न करें, अच्छे पुरुषों के सहवास में ही रहें। सोने के समय में भी एकान्त कमरे में न सोवें।

दिनचर्या लिखना

"कृतं स्मर" अपने किये हुए कर्म का स्मरण करो, ऐसा वेद कहता है। इसलिये अपनी दिनचर्या लिखने का अभ्यास अवश्य करना चाहिये। मैं कैसा था और अब कैसा हूँ, इसका मनन करने से अपनी उन्नति-अवनति का पता लग जाता है और सुधरने का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रतिज्ञा-पालन

जो प्रतिज्ञा की है उसका पालन करने का निश्चय कीजिये, ऐसा करने से निश्चय का बल आपके अन्दर बढ़ेगा और निश्चय का बल बढ़ जाने से आत्म शक्ति विकसित होकर ब्रह्मचर्य का पालन अपने आप होगा। इच्छाशक्ति की दृढ़ता ही मानव को देव बना देती है।

उच्च ध्येय और श्रेष्ठ आदर्श

अपने मन के सामने उच्च ध्येय एवं अत्यन्त श्रेष्ठ आदर्श रखना चाहिये। उस अवस्था तक पहुँचने की पराकाष्ठा तक मन के सब व्यापार श्रेष्ठ ही होंगे और अवनति नहीं होगी। श्रेष्ठ पुरुषों के चरित्र पढ़ने और वैसा ही श्रेष्ठ बनने का

अभ्यास करने से बड़ा बल मिलता है। इसे देखने में समय का दुरुपयोग करना कदापि उचित नहीं। सोने का स्थान स्वच्छ, खुला, शुद्ध हवा से युक्त, प्रकाशमय होना चाहिये। बिछौना बहुत नरम न हो, सख्त हो इससे स्वप्नदोष नहीं होते। इसीलिये ब्रह्मचारी को तख्त पर सोने का विधान है। ओढ़ने आदि के सब कपड़े निर्मल होने चाहिये। ६-७ घण्टों से अधिक निद्रा की आवश्यकता नहीं। सोने के कमरे में जलती अँगीठी या जलता दीप नहीं रखना चाहिये। रात्रि के भोजन के दो घण्टे पश्चात् सोना अच्छा होता है। सोने के पूर्व मल-मूत्र त्याग करना आवश्यक है तथा इस समय अवश्य जननेन्द्रिय को स्नान कराना चाहिये।

लँगोट बन्द रहना

लँगोट सदा स्वच्छ और पतले कपड़े का हो। मोटे कपड़े का होने से उष्णता बढ़ जाती है, जिससे हानि होने की सम्भावना है। पतले कपड़े का लंगोट लगाने से बहुत लाभ होता है और ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता मिलती है। अभ्यास से मन में पतित विचार नहीं आते हैं। किसी एक आदर्श चरित्र को अपने जीवन में उतारने का अभ्यास करने से आपमें आश्चर्यजनक प्रगति होगी।

सतत उद्योग

अपने आप को किसी न किसी सत्कर्म में सतत संलग्न रखना चाहिये कोई समय खाली न रखिये। कर्महीन मन हुआ, तो वह बुरे विचारों में गिरने लगता है। आलस्य ही बड़ा शत्रु है और उद्योग परम मित्र है। पुरुषार्थी ही ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है।

खड़ाऊँ का उपयोग

पाँवों में खड़ाऊँ का उपयोग करने से ब्रह्मचर्य पालन में सुविधा होती है, इसमें नसों का सम्बन्ध है। चाहे बाहर जाने के समय जूते पहने जायँ; परन्तु घर में तो खड़ाऊँ का उपयोग अवश्य किया जावे।

शुद्ध वायु-सेवन

शुद्ध हवा अत्यन्त आरोग्यकारी है, वायु ही अमृत है। शुद्ध जल, शुद्ध वायु, शुद्ध भूमि, प्रकाश और अवकाश ये पाँच अमृत हैं। यही पंचामृत कहलाते हैं, इन पंचामृत के सेवन से अपमृत्यु हट जाती है। प्रतिदिन ७, ८ मील शुद्ध वायु में भ्रमण करना आवश्यक है, इससे अनेक लाभ हैं। पहाड़ी पर नदी के किनारे अथवा शुद्ध प्रदेश में सवेरे सूर्य-प्रकाश में भ्रमण करने के समय ऐसा प्रतीत होता है कि निसर्ग देवता अपने शरीर में ब्रह्मचर्य, आरोग्य, मनोनिग्रह, आनन्द, पवित्रता प्रसन्नता, बल, तेज, सामर्थ्य, शान्ति आदि की स्थापना कर रहे हैं।

नियमित जीवन

हर एक कार्य नियत समय पर नियमित रीति से करने का अभ्यास बहुत लाभदायक होता है। यम-नियम पालन करने का यही मर्म है । नियमों को तोड़ कर मनमानी रीति से कार्य करने वाला मनुष्य व्यर्थ आयु खोता है। खान-पान, उठना-बैठना सभी नियम पूर्वक होना आवश्यक है।

स्वधर्मानुष्ठान

धैर्य, सहन शक्ति, मनोनिग्रह, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय-दमन, सद्बुद्धि, ज्ञान, सत्य, अक्रोध ये दश लक्षण धर्म के हैं। सदाचार धर्म का मुख्य लक्षण है। सदाचार के साथ ही धर्म के जो अन्य लक्षण हैं, उनका भी यथोचित पालन होना आवश्यक है मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता धर्म-पालन से होती है। धर्मविहीन मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। व्यक्ति में शान्ति एवं समाज का अभ्युदय धर्म से ही होता है। इसलिये ऐसे धर्म-नियमों का योग्य रीति से पालन होना अत्यन्त आवश्यक है। धर्म का पालन ही हमारा रक्षण कर सकता है।

आत्मविश्वास

दुर्बलता छोड़कर आत्मविश्वास धारण करना चाहिये। हीनता और दीनता के विचार दूर करने चाहिये। मैं आत्मा हूँ और मैं ही यहाँ का कर्त्ता हूँ इस विचार की सदा मन में धारणा करनी चाहिये। मैं पुण्यात्मा, बलवान्, श्रेष्ठ, सदाचारी ब्रह्मचारी और निरोगी अवश्य बनूँगा। अनेक प्रयत्न करके मैं अपनी उन्नति अवश्य सिद्ध करूँगा। ऐसा विचार सदा मन में धारण करने से अनेक विघ्न दूर होजाते हैं।

प्राणायाम

पद्मासन, स्वस्तिकासन, सिद्धासन या सुखासन लगाकर पूरक, कुम्भक, रेचक, प्राणायाम क्रमशः एक, चार और दो के अनुपात से करने से वीर्य पुष्ट होजाता है और वीर्य विकार नष्ट होजाते हैं। मन स्थिर और शान्त हो जाता है और मन में कुविचार नहीं आते। ब्रह्मचर्य पालन के लिये प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से बहुत लाभ होता है। स्वप्नदोषादि विकारों का भय नहीं रहता। शरीर और मन दोनों प्रसन्न रहते हैं। योग साधन के लिये प्राणायाम एक आधार शिला है।

ब्रह्मचर्य-पालन के सम्बन्ध में मुमुक्षु-आश्रम से प्रकाशित 'ब्रह्मचर्य साधन' पुस्तक तथा परमार्थ मासिक पत्र का विशेषाङ्क "ब्रह्मचर्याङ्क" अवश्य पढ़ें "

नियमित व्यायाम

दैनिक व्यायाम करने से शरीर में पसीना आता है। जिसके द्वारा भीतर के मल निकल जाते हैं। रक्त संचालन से रक्त निर्दोष होता है, नस-नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और पाचन शक्ति तीव्र हो जाती है। रुधिराभिसरण शरीर में ठीक होजाने से सब अवयव सुडौल होकर पुष्ट बनते हैं। खेलना, तैरना तथा अन्य व्यायाम करना ब्रह्मचारी के लिये अति आवश्यक है। व्यायाम करने से शरीर में वीर्य स्थिर होजाता है। इसलिये ब्रह्मचर्य की धारणा करने वाला पुरुष अवश्य दैनिक व्यायाम करे। व्यायाम के समय नाक से श्वास लेनी चाहिये। प्रतिदिन दो बार व्यायाम करना उत्तम है। अपनी शक्ति के अनुकूल ही व्यायाम करना चाहिये, अधिक नहीं। पसीना आते ही कपड़े से पोंछना चाहिये। भूख लगने पर व्यायाम नहीं करना चाहिये। व्यायाम के समय सिर और छाती सीधी रखनी चाहिये। बल के अनुसार नियम पूर्वक व्यायाम करने से ही लाभ होता है। किसी अच्छे अनुभवी से परामर्श करके अपने उपयुक्त व्यायाम का निश्चय करके तदनुसार करना अत्युत्तम है। व्यायाम से अनेक लाभ हैं। स्वास्थ्य रक्षा तथा ब्रह्मचर्य पालन के निमित्त व्यायाम ही सर्वाधिक आवश्यक क्रिया है।

ईश्वर भक्ति

जिस सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर ने निखिल ब्रह्माण्डों की रचना की, जिसने जीवों के सुख के लिये, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि का निर्माण किया और जिसने हमें अपनी अहैतुकी दया से इस धराधाम पर देव दुर्लभ मानव-योनि प्रदान करके भेजा, उस एक ईश्वर ही की भक्ति और उसी को अनन्य भाव से उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है। वस्तुतः यह नर देह मिलता ही इसी उद्देश्य से है। ईश्वर भक्ति अथवा उपासना से अनन्त लाभ हैं। ब्रह्मचर्य के लिये ईश्वरोपासना प्रमुख साधन है। पग-पग पर प्रभु कृपा का सम्पादन करने से लोक परलोक दोनों का सुधार होजाता है। जो हमारे शरीर का निर्माता है, उसी की कृपा से उसकी रक्षा और पालन भी होता है। जैसे एक इन्जीनियर मशीन की देख-भाल ठीक कर सकता है, ड्राइवर नहीं। हम ड्राइवर हैं भगवान इन्जीनियर हैं। अतएव उस मंगलमय प्रभु की भक्ति करना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। उसी की कृपा से हमारे शरीर, स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की रक्षा होगी।

नित्य नियमावलोकन

दिनचर्या के नियम बनाकर तत्परता से नित्य उन्हें पालन करना चाहिये। यदि नियम के पालन में शिथिलता रहेगी तो गाड़ी अधिक दिन तक नहीं चलेगी। दृढ़ निश्चय और प्रबल इच्छाशक्ति से ही प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है यदि किसी दिन नियम पालन न होसके, तो कठोर प्रायश्चित करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये,ऐसा होने से मन पर नियन्त्रण रहेगा कि हमें इसका पालन तो करना ही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सभी ने कठोरता से नियमों का पालन किया है। अतएव अपने जीवन को सार्थक और उन्नतिशील बनाने के लिये नियमों को दृढ़ता से पालन करना होगा।

विषयों में दोष-दृष्टि

इन्द्रियों के विषयों से कितने अनर्थ हो रहे हैं, इसका विचार करके विषयाधीन न होकर विषयों को अपने आधीन करना चाहिये। विलासिता से सर्वथा दूर रहकर जीवन को त्यागमय बनाने का अभ्यास करने में ही मानव-जीवन की सार्थकता है। संसारासक्त जीवन पतन की ओर लेजाता है और त्यागपूर्ण जीवन लोक परलोक दोनों का सुधार करता है।

अपवाद की भीति

समाज का भय भी मनुष्य को बुरे मार्ग में जाने से रोकता है। कलंकित जीवन और दुराचार से अपने मन को सावधान करने के लिये विचार करना चाहिये कि ब्रह्मचर्य की रचा न हुई और बुरा आचरण हुआ तो लोग हमारी निन्दा करेंगे ऐसी भीति मन में धारण करके बुरे मार्ग में न जाना ही श्रेयस्कर है। यदि शुभ कार्य करते हुए किसी ने दोष लगाया, तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये। सत्य की अन्त में विजय होती है। समाज में तुम्हारे सदाचरण की प्रशंसा आज नहीं तो कल अवश्य होगी, ऐसा विश्वास रक्खो।

योगासन

सर्व-कल्याणप्रद योग की सिद्धि के लिये भगवान् पातञ्जलि ने अष्टाङ्ग-योग का वर्णन किया है। इस अष्टाङ्ग-योग में तृतीय योग "आसन" का विशेष महत्व है। आसन सिद्धि के बिना कोई भी मनुष्य अपने साधन भजन में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। योगासनों से केवल योग-सिद्धि ही नहीं, वरन् मानसिक शक्ति का विकास तथा सुन्दर स्वास्थ्य की भी प्राप्ति होती है। अनेक प्रकार के रोग समूल नष्ट होजाते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में भजन-ध्यान के समय चार आसनों

की विशेष आवश्यकता होती है। १—सिद्धासन, २—पद्मासन, ३— स्वस्तिकासन, ४—सुखासन।

अपने साधन में सफलता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि इन चारों आसनों को अथवा इनमें से किसी एक को पूर्णतया सिद्ध करलें।

सिद्धासन

सिद्धासन सभी आसनों का राजा कहा गया है। साधकों के लिये यह आसन परमोपयोगी सिद्ध हुआ है। इसकी विधि तथा क्रिया इस प्रकार से है:—

विधि—पहले साधारण रूप से अपने आसन पर शान्ति पूर्वक बैठ जावे। पश्चात अपने बायें पैर की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीच में लगावे और दाहिने पैर की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपरी भाग पर रक्खे तथा दोनों पैरों के पंजे जाँघ और पिंडलियों के बीच स्थिर करे। पश्चात अपने दोनों हाथों

की उँगलियों को आपस में बाँधकर मुद्रा रूप में सामने एड़ी के ऊपर रक्खे, अथवा हाथों को घुटनों पर भी रख सकते हैं। तदन्तर मेरुदण्ड (रीढ़) को सीधा करके दृष्टि को भौंहों (भृकुटी) के बीच अथवा नासिका के अग्रभाग में सुविधानुसार स्थिर करके इधर-उधर न देखता हुआ शान्ति पूर्वक बैठे।

नेत्र खुले रहने पर तो दृष्टि को नासिकाग्र अथवा भृकुटि में स्थिर किया ही जा सकता है। किन्तु यदि इसमें कठिनाई प्रतीत हो तो नेत्र बन्द करके सुरति के द्वारा दृष्टि स्थिर कर सकते हैं। जो भृकुटी अथवा नासिकाग्रभाग में किसी भी प्रकार अपनी दृष्टि को स्थिर कर ही नहीं सकते वे किसी बाह्य बिन्दु पर भी दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास कर सकते हैं।

लाभ—सर्व प्रथम इस आसन से बैठने का ही अभ्यास करना चाहिये तथा नित्य थोड़ा-थोड़ा सा समय बढ़ाते रहना चाहिये। जितने अधिक समय तक आसन से बैठा जावेगा उतनी ही अधिक मन की एकाग्रता बढ़ती जावेगी। इससे आत्मानन्द का अधिक अनुभव होगा।

सिद्धासन सभी आसनों में सर्वश्रेष्ठ आसन बतलाया गया है। इस आसन से मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध तथा जालन्धरबन्ध तीनों ही बन्ध बड़ी सरलता से स्वयमेव सिद्ध हो सकते हैं।

मूलबन्ध करने के लिये पहले मन के द्वारा गुदा को अन्दर की ओर आकर्षित करे तथा शिश्न के समेत मूल स्थान को ऊपर खींचने का अभ्यास करे। इस अभ्यास के द्वारा ही

अपान को प्राण की ओर लाने का प्रयत्न करे। इससे अपान प्राण में मिल जाते हैं अर्थात् प्राण स्थिर होजाते हैं। कहावत है:—

अपान वायु ऊपर ले जावे, प्राण वायू नीचे ले आवे।
जापर यह साधन बनि आवे, योगी बुड्ढा हो न पावे॥

इस प्रकार के अभ्यास से मूलबन्ध सिद्ध होता है।

मूलबन्ध के अभ्यास से वीर्य उर्ध्वरेता होजाता है और स्वप्नदोष आदि सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। मस्तिष्क व हृदय दोनों बलवान होजाते हैं।

मेरुदण्ड को सीधा रख कर ठुड्डी को कण्ठमूल में लगाने से जालंधर बन्ध होता है। इससे स्मरण शक्ति का विकास होता है।

इसके अतिरिक्त नासिका से पेट की वायु को बाहर निकाल कर तथा पेट को खलाकर पीठ में मिलावें। इसे उड्डियान बन्ध कहते हैं। इन तीनों बन्धों को प्राणायाम के समय किया जा सकता है। इस उड्डियानबन्ध को नित्य करने से पेट के सारे रोग नष्ट होजाते हैं।

सिद्धासन से प्राण तथा मन दोनों ही स्थिर होते हैं। यह आसन ध्यान तथा भजन के लिये बहुत ही उपयोगी है। भगवान शंकर इसी आसन के द्वारा निर्विकल्प समाधि लगाते हैं। इससे शरीर का भान नहीं रहता और ध्यान में स्वाभाविक ही मन स्थिर होजाता है। मन में स्वतः ही परमानन्द तथा शान्ति का अनुभव होने लगता है तथा मन और इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होजाती

हैं। जिन्हें अखण्ड ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी हो उन्हें नित्य ही यह आसन करना चाहिये। यह ध्यान रहे कि आसन तीन घण्टे तक बैठने से सिद्ध होता है।

पद्मासन

विधि—यह आसन करते समय पहले दाहिने पैर को बायीं जाँघ पर सटा कर रखे। दोनों पैरों के तलुवे दोनों जाँघों पर समान रूप से आजावें। इसके पश्चात् अपने दाहिने हाथ को दाहिने घुटने पर और बायें हाथ को बायें घुटने पर रक्खें। मेरुदण्ड तथा सिर को समान रूप से सीधा करके बैठें। अपनी नेत्र-दृष्टि को भौहों के बीच अथवा नासिका के अग्र भाग में स्थित करें।

जो लोग प्रारम्भ अवस्था में इस आसन को नहीं कर सकते, उन्हें चाहिये कि वे पहले एक पैर को दूसरे पैर की जाँघ पर रख कर बैठने का अभ्यास करें। दूसरे (नीचे वाले) पैर की

एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीच में अवश्य रहनी चाहिये। एक पैर से थोड़ी देर बैठने के पश्चात् पुनः वही क्रिया दूसरे पैर से करें और इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास करने से पूर्ण पद्मासन सरलता से होने लगेगा। यह ध्यान रहे कि बैठने वाले आसनों में मेरुदण्ड सदा सीधी रखनी चाहिये।

लाभ—सिद्धासन के बाद दूसरा स्थान पद्मासन का ही है। पद्मासन के अभ्यास से भी प्राण तथा मन स्थिर होते हैं। भजन में रुचि पैदा होती है। इस आसन से बैठ कर भी ठुड्डी को कण्ठ-मूल में लगाया जाता है, जिससे कि परम शान्ति का अनुभव होता है। यह आसन भी सिद्धासन की ही भाँति सिद्ध होता है।

गृहस्थ आश्रमवासियों को पद्मासन से बैठना परमोपयोगी है। इस आसन का भी अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाकर तीन घण्टे तक कर लेना चाहिये।

इस आसन से पैरों की नस नाड़ियाँ बिलकुल शुद्ध हो जाती हैं और पेट के सभी विकार दूर हो जाते हैं। पाचन शक्ति बढ़ जाती है। बात रोग दूर हो जाता है। मस्तिष्क की स्मरण शक्ति ठीक होने में सहायता प्राप्त होती है। इससे विचार-शक्ति की वृद्धि होती है।

इस आसन से बैठकर भृकुटि अथवा नासिकाग्र में दृष्टि स्थिर करने में कष्ट हो तो इसमें भी बाह्य बिन्दु पर दृष्टि स्थिर कर सकते हैं। इस आसन से भगवान् का ध्यान बड़ी सरलता से होता है, शरीर का ध्यान नहीं रहता।

स्वस्तिकासन

विधि—इस आसन में आधा सिद्धासन लगाया जाता है। प्रथम अपने दाहिने पैर की एड़ी को गुदा और अंडकोष के बीच में लगावें। फिर बायें पैर को उठाकर दाहिने पैर की जाँघ तथा पिंडलियों के बीच में स्थिर करें और अपने दोनों हाथों को घुटनों पर रक्खें। मेरुदण्ड को सीधा रक्खें। यही स्वस्तिकासन है।

लाभ—जिन्हें पद्मासन से बैठने में कठिनाई प्रतीत होती है। उन्हें चाहिये कि वे इसी स्वस्तिकासन से बैठने का अभ्यास करें इसमें मेरुदण्ड ग्रीवा आदि समान रखनी चाहिये। इस आसन से भी प्रायः वही लाभ होता है जो कि पद्मासन से होता है।

सुखासन

साधन भजन करने के लिये यह सबसे सरल आसन है। इस आसन से बैठने में किसी प्रकार की कोई भी कठिनाई नहीं हो सकती और सभी लोग सरलता से कर सकते हैं।

विधि—सर्व प्रथम अपने आसन पर बैठकर दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने के निकट रक्खें और बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने के निकट रक्खें इसमें कोई दायें बायें पैर का विशेष नियम नहीं है। हाँ, दोनों पैर दोनों घुटनों के नीचे होना चाहिये। यही सुखासन है।

इस आसन में भी पीठकी रीढ़ सीधी रखनी परमावश्यक है।

वद्ध पद्मासन

विधि—इस आसन में अपने दाहिने पैर को बायें पैर की जांघ पर रखे और बायें पैर को दाहिने पैर की जाँघ पर रक्खें। पैर रखते समय यह ध्यान रहे कि दोनों पैरो की एड़ियाँ पेट

के नीचे भाग से सटी रहें। इतना करने के पश्चात अपने दोनों हाथ पीछे ले जावें और अपने दाहिने हाथ से दाहिने पैर का अँगूठा और बायें हाथ से बायें पैर का अँगूठा पकड़ें। फिर ठोड़ी को कण्ठमूल में लगावें तथा दृष्टि को नासिकाग्र किंवा भृकुटी में स्थिर करें। प्रथम तो इसमें अवश्य ही कठिनाई प्रतीत होगी किन्तु कुछ दिन के अभ्यास करने के पश्चात फिर सरलता से यह आसन होने लगेगा।

लाभ—इस बद्ध पद्मासन के अभ्यास से शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियां खुल जाती हैं। रक्त का भली प्रकार संचार होने लगता है और नस नाड़ियों में रुका हुआ जो जहरीला माद्दा है वह नष्ट हो जाता है और रक्त का प्रवाह तीव्र हो जाता है। इससे पेट सम्बन्धी अनेक रोग, जैसे—पेट का फूलना बदहज़मी, पेट का दर्द, वायु विकार, कब्ज, खट्टी डकार आदि दूर हो जाते हैं। इस आसन को कम से कम पाँच मिनट से लगाकर आधा घण्टा तक किया जा सकता है और अधिक देर तक करने से अधिक लाभ हो सकता है।

इस आसन से कमर के स्नायु तथा पैर की नस नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। इससे मेरुदण्ड भी ठीक हो जाता है। मेरु-दण्ड में मज्जा प्रवाह यथावत होने लगता है। फेफड़ों की शक्ति बढ़ती है। इस आसन के भली भाँति करने से क्षय आदि रोग तक दूर हो सकते हैं। तिल्ली आदि के लिये भी यह आसन बहुत उत्तम है।

झूलासन

विधि—झूलासन करने के लिये पहले पद्मासन की अवस्था में बैठे। फिर अपने दोनों हाथों को दोनों ओर जमीन पर रक्खें और हाथों पर बल देकर अपने शरीर को ऊपर उठावें। जब शरीर ऊपर उठ जावे तो झूले के समान अपने शरीर को आगे पीछे झुलावे। यही झूलासन है।

लाभ—इस आसन में शरीर को जितना ही अधिक ऊँचा उठाया जावेगा उतना ही अधिक लाभ होगा। हाथों की शक्ति बढ़ती है तथा पेट के विकारों का नाश होता है।

कुक्कुटासन

विधि—इसमें पूर्वोक्त प्रकार से पहले पद्मासन लगाकर बैठे फिर अपने दोनों हाथों को दोनों पैरों की जांघों और पिंडलियों के बीच में से कोहनी तक इस प्रकार बाहर निकालें कि दोनों पैरों के पंजे हाथों के भीतर की ओर रहें, फिर अपनी हथेलियों को जमीन में लगाकर अपने शरीर को ऊपर लगावें, यही कुक्कुटासन है।

लाभ—इस आसन से भी भूलासन तथा पद्मासन के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। यह आसन स्फूर्तिवर्द्धक तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है। सभी नाड़ियों की शुद्धि भी इससे स्वतः ही हो जाती है।

गर्भासन

विधि—पहले कुक्कुटासन की भाँति अपने दोनों हाथों को जाँघ और पिंडलियों के बीच में से कोहनी तक निकालकर बैठें फिर अपने दाहिने हाथ से दाहिना कान और बायें हाथ से बायाँ कान पकड़ें। यही गर्भासन है।

लाभ—इससे पेट के अन्दर की आँतों के समस्त दोष दूर होजाते हैं तथा क्षुधा बढ़ाने में यह आसन अत्यन्त उपयोगी है।

पादांगुष्ठासन

विधि—पाँव की एड़ी को गुदा अण्डकोष के बीच में लगाकर उसी पर बैठें और दूसरा पाँव घुटने पर रक्खें। यही पादांगुष्ठासन है।

लाभ—गुदा और अण्डकोष के बीच में वीर्य की नाड़ियाँ हैं उनको एड़ी से दबाने से वीर्य का प्रवाह नीचे की ओर होना बन्द हो जाता है। इसी से यह आसन वीर्य दोष नष्ट करने में अत्यन्त उपयोगी है। स्त्रियों के लिये यह आसन वर्जित है। इस आसन से स्वप्नदोष भी नष्ट हो जाता है। इस आसन को एक मिनट से लेकर पाँच मिनट तक करने का अभ्यास करना चाहिये।

एकपाद पश्चिमोत्तानासन
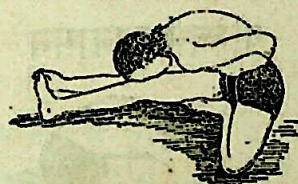
विधि—अपने आसन पर बैठकर किसी एक पैर की एड़ी को गुदा और अण्डकोष के बीच में रक्खें तथा दूसरे पैर को सीधा फैला कर रक्खें। पश्चात् श्वास नासिका से भर कर अपने दोनों हाथों से उस फैले हुए पैर के अँगूठे को पकड़ें। फिर श्वास को धीरे-धीरे निकालते हुए अपने सिर को घुटने की ओर ले जावें और अन्त में ललाट अथवा नासिका को घुटने से लगावें यह ध्यान रहे कि घुटना जमीन से सटा रहे। इस आसन को ५ मिनट से आधे घन्टे तक कर सकते हैं।

लाभ—यह आसन मिनट दो मिनट करने से ही अधिक

लाभ की आशा नहीं करनी चाहिये। साधारणतया ५ मिनट का तो अभ्यास करना ही चाहिये। इससे प्लीहा और यकृत के दोष कम हो जाते हैं। आँतों के दोष दूर होने से पाचन शक्ति बढ़ जाती है। भूख खुल जाती है।

यह आसन अदल बदल कर दायें और बायें दोनों पैरों से करना चाहिये।

इसे नाभि सहित पेट को पीठ की ओर खींचकर तथा गुदा और शिश्न के आस-पास की नस-नाड़ियाँ मन के द्वारा खींच कर करने से वीर्य स्थिरता सम्बन्धी अनेक लाभ होते हैं।

पश्चिमोत्तानासन

विधि—जमीन पर बैठ कर अपने पैरों को सीधा फैलावें। पश्चात् दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लें। तदनन्तर नासिका के द्वारा वायु खीचकर दोनों पैरों को ताने। फिर धीरे-धीरे नासिका से वायु निकाल कर अपने सिर को दोनों घुटनों के बीच में रक्खें। इसे महामुद्रा भी कहते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में इसका धीरे धीरे अभ्यास करना चाहिये। जिनका पेट बड़ा हो अथवा हड्डियाँ कड़ी हों, उन्हें प्रारम्भ में कठिनाई प्रतीत होगी; किन्तु कुछ दिनों के अभ्यास से यह आसन सरल हो जायगा।

जिन्हें यह आसन करके में कठिनाई प्रतीत हो, वे पहले अपने हाथों से केवल पैर के अंगूठे को ही पकड़ें। यदि अंगूठे भी पकड़ में न आवें, तो दोनों हाथों को जाँघ से लेकर पैरों तक वारम्बार फिरायें और कमर अधिक से अधिक झुकाने का प्रयत्न करें। जितनी कमर झुकती जायगी उतने ही हाथ अंगूठे तक पहुँचते जावेंगे। जब अंगूठा पकड़ में आने लगे तब सिर को घुटनों में लगाने का प्रयत्न करें। सदा यह ध्यान रहे कि घुटने जमीन से सटे रहें, उठने न पावें। इस आसन को दस मिनट से लगा कर ३० मिनट तक करने का अभ्यास डालना चाहिये इसमें पेट जितना ही अन्दर की ओर खींचा जावेगा, उतना अधिक लाभ होगा।

लाभ—इस आसन से अनेक लाभ होते हैं। पैरों के स्नायुओं पर अधिक खिंचाव आने से उनकी नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं तथा पीठ एवं कमर की नस-नाड़ियों में रक्त का प्रवाह भी भली प्रकार होने लगता है और उनके जितने रोग हैं, वे नष्ट होने लगते हैं तथा पेट की बीमारियाँ दूर होने लगती हैं। आतें शुद्ध हो जाती हैं। अजीर्ण दूर होजाता है। भूख बढ़ती है।

इसके निरन्तर अभ्यास से कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत करने में अत्यधिक सहायता मिलती है और नाद का मार्ग खुलने लगता है।

उत्तानपादासन

विधि—जमीन पर लेट कर स्नायु ढीले करे और बहुत धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों को ऊपर उठावें। जितनी ही अधिक मंदगति से पैर ऊपर उठेंगे, उतना ही अधिक बल पैरों के स्नायुओं और आँतों पर पड़ेगा। यूँ तो पैरों को शीघ्रता से एकदम ऊपर ले जाना बड़ा ही सरल है, किन्तु अति-मंदगति से पैरों को ऊपर लेजाने में बड़ा ही परिश्रम होता है और तभी अधिक लाभ होता है। जब पैर जमीन से लगभग एक बालिश्त ऊँचाई तक पहुँच जावें, तब पैरों को रोक दें और जितनी अधिक देर तक ऊपर रोक मिले उतनी देर तक रोके रहें जब अधिक कष्ट प्रतीत होने लगे, तो फिर उसी मंदगति से नीचे की ओर पैर उतार लावें। एकदम शीघ्रता से पैर नीचे नहीं लाना चाहिये।

लाभ—इस आसन से दाँतों को शुद्ध करने में बड़ी सहायता मिलती है। पेट की स्थूलता (मोटापन) कम हो जाती है। पेट समान अवस्था में आजाता है। एक पैर को नीचे रखकर दूसरे पैर को ऊपर उठाने से अर्द्ध उत्तानपाद आसन होता है।

दोनों पैरों को ऊपर उठाकर चक्कर लगाकर लगाने से जाँघों पर काफी बल आता है और जाँघ सम्बन्धी रोग-नष्ट करने में सहायता मिलती है। स्त्रियाँ भी इस आसन को कर सकती हैं।

पवन मुक्तासन

विधि—अपने आसन पर शान्ति पूर्वक चित्त लेट जावें और एक पैर को घुटने से मोड़कर पेट की ओर लावें फिर अपने दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में बाँध कर घुटनों को हाथों से पेट की ओर खूब दबायें। पश्चात साँस भर कर पड़े हुए पैर को थोड़ा सा उठाकर तानने का प्रयत्न करें और हाथों से दबे हुए पैर को सिर की ओर तानें फिर सिर को थोड़ा सा उठाकर पूरे शरीर को खूब तानें थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे बायु को निकालते हुए पुनः शान्ति पूर्वक लेट जावें। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करनी चाहिये। इस प्रकार कम से कम तीन बार यही क्रिया करें। जिन लोगों को शौच साफ न होता हो, उनको चाहिये कि वे प्रातःकाल शौच से पूर्व जीभ तालू-साफ करके चुल्लू से कम से कम एक पाव से आधा सेर तक पानी पियें पानी पीने के कुछ मिनट बाद इस आसन को करें।

लाभ—इस आसन से पेट तथा विशेषतया निचली आँतों पर प्रभाव पड़ता है। पेट में वायु भर कर शरीर को तानने से बड़ी आतों का मल नीचे खसकने लगता है और शौच साफ होता है। बड़ी आँत मजबूत होजाती है। इस आसन को स्त्रियाँ भी कर सकती हैं; किन्तु गर्भावस्था में करना वर्जित है।

गोरक्षासन (गोरखासन)
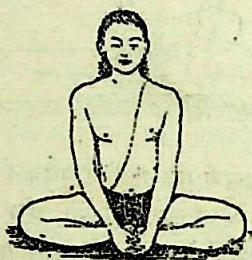
विधि—अपने आसन पर सरलता से बैठकर दोनों पैरों के तलवों को आपस में मिलावें. पश्चात् दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में बाँधकर पैरों के नीचे रक्खें फिर धीरे-धीरे दोनों पैरों को हाथों के द्वारा अन्दर की ओर समेट कर पैर की एड़ियों को गुदा और लिङ्ग के बीच स्थित करें। दोनों घुटनों को जमीन से मिलाने का प्रयत्न करें तथा छाती को आगे की ओर निकालें। मेरुदण्ड को सीधा रक्खें इस आसन को गोरखनाथ जी ने किया था। इसीसे इसका नाम गोरक्षासन या गोरखासन पड़ा है। यह ५ मिनट से लगाकर १५ मिनट तक किया जासकता है।

लाभ—अखण्ड ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वालों के लिये यह आसन बहुत ही लाभदायक है। इस आसन से प्रमेह, स्वप्नदोष व काम-विकार नष्ट हो जाते हैं।

ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन
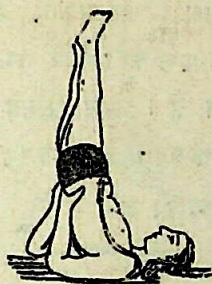
विधि—पहले शान्ति पूर्वक अपने आसन पर चित्त लेट जावें। कोहनी को जमीन पर सटा कर छाती से पैरों तक का भाग अपने हाथों के सहारे ऊपर की ओर सीधा उठावें और अपनी कमर को हाथों से साधें रहें। पैर के अँगूठे और नासिका एक सीध में रहें। सिर और कोहनियाँ जमीन से लगी रहें। इसे कम से कम १० मिनट तक अवश्य करें।

सर्वाङ्गासन
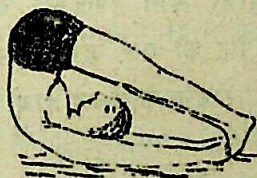
दोनों पैर सिर की ओर ले जाकर पृथ्वी पर लगाने से तथा हाथों से पैर के अँगूठे पकड़ने से यही आसन सर्वाङ्गासन हो जाता है।

लाभ—यह आसन रक्त शुद्ध करने के लिये परम उपयोगी है। रक्त हृदय और फेफड़ों में आकर उन्हें शुद्ध बनाता है।

सिर की पीड़ा भी इससे दूर हो सकती है। नेत्रों के लिये भी यह आसन उत्तम है। कफ का विकार नष्ट हो जाता है। उदर रोग भी दूर हो जाते हैं। इससे फेफड़े भी बलवान होते हैं और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, मेरुदण्ड लचीला होजाता है। और उसके विकार नष्ट हो जाते हैं।

हलासन
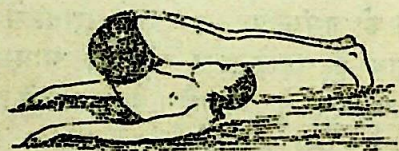
विधि—पृथ्वी पर सीधे लेटकर अपने दोनों पैरों को उठाकर सिर के पीछे जमीन पर लगावें। केवल पैरों के पंजे जमीन को छूते हुए रहें, बाकी भाग बिलकुल सीधा रहे। घुटने झुकने न पावें। हाथ पीठ की ओर जमीन पर ही सीधे फैले रहने चाहिये, पीठ को रोकने के लिये हाथों से सहायता भी ले सकते हैं।

लाभ—इस आसन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। रक्त बहने वाली नाड़ियों में दूषित रक्त जमा हो जाता है, वह इस आसन से दूर हो जाता है।

घुटने मोड़कर कान पर लगाने से तथा हाथों से पैर के अँगूठे पकड़ने से यही कर्ण पीड़ासन होजाता है।

चक्रासन
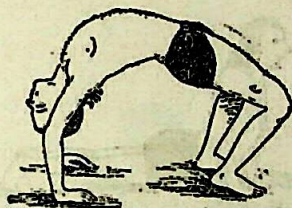
विधि—अपने आसन पर पीठ के बल सीधा लेट जावें। पश्चात् दोनों हाथों की हथेलियों को सिर की ओर जमीन पर लगावें तथा पैरों के पंजों को जमीन पर लगा कर कमर व छाती का भाग ऊपर की ओर अधिक से अधिक उठावें तथा जितना होसके, हाथों और पैरों के पंजों को पास पास लाने का प्रयत्न करें। इस आसन में शरीर की अवस्था चक्र के समान गोल होजाती है इसी से यह चक्रासन कहलाता है।

यह आसन खड़े होकर पीछे से अपने हाथों को जमीन पर रखने से भी होता है; किन्तु यह सबके लिये आसान नहीं है।

लाभ—इससे उदर और कमर के भाग पर काफी जोर पड़ता है। सारा शरीर तन जाता है। शरीर में स्फूर्ति आजाती है। जोड़ों का दर्द भी कम होजाता है। शरीर का सारीपन दूर होजाता है।

सर्पासन
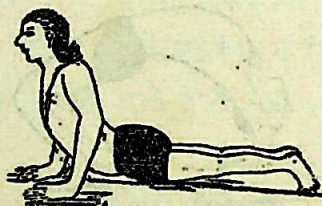
विधि—भूमि पर पेट के बल लेट जावें तथा दोनों हाथों की हथेलियों को पेट के आस-पास जमीन पर रक्खें। पश्चात् छाती को आगे की ओर तानते हुए अपनी छाती व सिर को साँप के फन की भाँति ऊपर उठावें। यही सर्पासन है।

शलभासन

विधि—पेट के बल भूमि पर लेट जावें, तथा हाथों को सर्पासन की भाँति कमर के आस पास हथेली के बल जमीन पर रक्खें। पश्चात् सिर, छाती तथा पैर (जाँघ तक का पूरा भाग) ऊपर की ओर उठावें। इस प्रकार करने से शलभ (टिड्डी) की आकृति बन जावेगी। इसी से इसका नाम शलभासन है।

लाभ—इससे जाँघ, पेट, बाहु आदि में काफी बल पहुँचता है।

धनुरासन
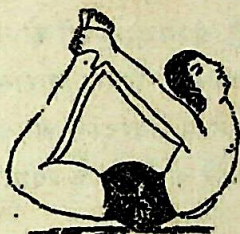
विधि—पेट के बल ज़मीन पर लेटकर पैरों को ऊपर उठावें तथा अपने हाथों से पैरों के अँगूठों को पकड़ कर सिर की ओर खींचने का प्रयत्न करें। इस प्रकार करने से शरीर की आकृति धनुष की भाँति बन जाती है, इसीसे इसका नाम धनुरासन है।

लाभ—इस आसन के करने से घुटनों का दर्द शान्त हो जाता है तथा जाँघों को भी काफी बल पहुँचता है।

एकपाद शिरासन

विधि—अपने आसन पर सरलता से बैठ कर अपने दोनों हाथों से किसी एक पैर को ऊपर की ओर धीरे-धीरे उठाकर

सिर के पीछे गले के पृष्ठ भाग पर चढ़ावें। इससे पैर तथा जाँघ आदि की नस-नाड़ियाँ शुद्ध एवं नर्म होजाती हैं।

पूर्वोक्त प्रकार से ही अपने दोनों पैरों को गर्दन के पृष्ठ भाग पर चढ़ा देने से यही आसन द्विपाद शिरासन हो जाता है।

इस आसन के करने में जबरदस्ती अथवा खींचातानी नहीं करना चाहिये, धीरे-धीरे करने का अभ्यास करना चाहिये।

मत्स्येन्द्रासन

विधि—अपने दायें पैर का पंजा बायें पैर के मूल स्थान में इस प्रकार रक्खें कि उसकी एड़ी तोंदी से लगी रहे; किन्तु पैर बाहर खसकने न पावे। तत्पश्चात् बायें पैर का पंजा उठाकर दाहिने पैर के घुटने के बाहर जमीन पर रक्खें; फिर दाहिना हाथ बायें पैर के घुटने के बाहर से डाल कर बायें पैर का अँगूठा पकड़ें। फिर बायें हाथ को पीठ की ओर से घुमाकर उससे दाहिने पैर की एड़ी पकड़ें और अपना मुख तथा गर्दन आदि पीछे की ओर फेरें तथा दृष्टि को नासाग्र भाग में रक्खें। इस आसन का नाम मत्स्येन्द्रासन है।

हाथ-पैर के अदल-बदल से यह आसन दोनों ओर करना चाहिये। यह आसन प्रारम्भ में करना बहुत ही कठिन जान पड़ता है; किन्तु नित्य ही थोड़ा-थोड़ा प्रयत्न करने पर सरलता से लगाया जा सकता है।

जिन्हें प्रारम्भ अवस्था में यह आसन बहुत ही कठिन प्रतीत हो, उन्हें पहले 'अर्ध मत्स्येन्द्रासन' का अभ्यास करना चाहिये। 'अर्ध मत्स्येन्द्रासन' में केवल थोड़ा सा अन्तर हो जाता है। वह यह कि मत्स्येन्द्रासन में जो पैर दूसरे पैर के मूल स्थान में रक्खा जाता है उस पैर को मूल स्थान में न रखकर उसकी एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीच में लगानी पड़ती है। बाकी सब क्रिया मत्स्येन्द्रासन की ही भाँति करनी पड़ती है।

लाभ—इस एक ही आसन के करने से शरीर के कई अङ्गों पर एक साथ ही काफी प्रभाव पड़ता है। पीठ, पेट, बाहु, पैर, कमर, जाँघ तथा छाती के सारे स्नायुओं का एक साथ ही काफी खिचाव होने लगता है। इससे पेट का शूल, आमवात तथा आँतों में होने वाले सभी रोगों का पूर्ण निराकरण हो जाता है। स्वास्थ्य की वृद्धि करने में इस एक ही आसन से अत्यधिक सहायता मिलती है।

मयूरासन

विधि—इस आसन के करते समय मनुष्य के शरीर की आकृति मोर की तरह बन जाती है, इसी से इसका नाम मयूरासन पड़ा है। यह दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो मेज के एक किनारे हथेलियों पर बल देकर सारे शरीर को उठाने से, दूसरे जमीन पर हाथों के बल शरीर को उठाने से। दोनों में दूसरा प्रकार ही अधिक उपयोगी व लाभदायक है।

इस आसन के करते समय पहले अपने आसन पर घुटनों के बल बैठ जावें। फिर अपने दोनों हाथ हथेली के बल जमीन पर रक्खें और कोहनियाँ अपनी तोंदी के दोनों ओर आस-पास सटी हुई लगावें। हाथों के अँगूठे एक समान रखने चाहिये। पश्चात् कोहनियों पर अपने सारे शरीर का पूरा भार सम्हाल कर धीरे-धीरे पहले अपने पैरों को पीछे की ओर सीधा लम्बा करके ऊपर की ओर उठावें और साथ ही सर व छाती को भी ऊपर उठावें। अर्थात् अपने सारे शरीर का भार कोहनियों पर रखकर शरीर को सीधा करें। इस प्रकार करने से शरीर की आकृति मयूर जैसी बन जावेगी। इसी का नाम मयूरासन है।

मयूरासन में यदि पैरों को ऊपर न उठाकर पैरों के पंजे जमीन पर लगावें तो वही हंसासन बन जाता है।

लाभ—मयूरासन से अनेक लाभ होते हैं। जिस प्रकार मोर जहरीले और विषैले सांपों को खा जाता है; किन्तु मोर पर उनके विष का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार मनुष्य भी यदि इस आसन का पूर्ण अभ्यास कर ले तो उस पर भी विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसके अतिरिक्त जठराग्नि का प्रदीप्ति होना, भूख का बढ़ना आदि अनेक लाभ होते हैं। उदर सम्बन्धी रोगों का शमन करने के लिये यह आसन बहुत ही उत्तम है। कब्ज आदि तो आसानी से ही दूर किये जा सकते हैं।

वृश्चिकासन
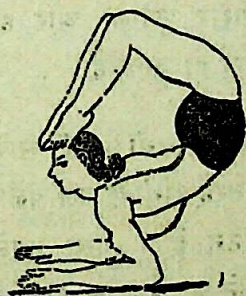
विधि—यह आसन बड़ी सावधानी से करना चाहिये। जिनका शरीर स्थूल है उन्हें इसमें काफी कठिनाई पड़ेगी, जो लोग शीर्षासन कर सकते हैं उनके लिये यह आसन सरल हो जाता है। इस आसन में दीवाल आदि का सहारा भी ले सकते हैं। यह दो प्रकार से किया जा सकता है पहला प्रकार-दोनों हाथों की उँगलियों से कोहनी तक का भाग जमीन पर रक्खें

फिर उन पर बल देकर अपने सिर तथा पैरों को ऊपर उठावें और पैरों को घुटनों से मोड़कर सिर के ऊपर रखने का प्रयत्न करें। यही वृश्चिकासन है। दूसरा प्रकार—प्रथम शीर्षासन करें फिर इसी अवस्था में अपने सिर को धीरे धीरे ऊपर उठाये। जब सिर पूरा ऊपर उठ जावे तो अपने पैरों को घुटनों से मोड़ कर धीरे-धीरे सिर की तरफ लावें और उन्हें सिर के ऊपर रख दें। यही वृश्चिकासन है। इन दोनों प्रकारों में दूसरा प्रकार अधिक सरल है।

लाभ—यह आसन हाथों, बाहुओं एवं कन्धों में बल पहुँचाता है और पेट तथा आँतों को शुद्ध व बलवान बनाता है। इससे सारा शरीर फुर्तीला और हलका हो जाता है। शरीर का भारीपन दूर हो जाता है।

कुछ लोग अपनी हथेलियों पर ही सारे शरीर का भार साध कर बिच्छू की तरह हाथों के बल चला भी करते हैं; किन्तु यह उससे भी कठिन है। ऐसा करने के लिये पहले वृश्चिकासन पर रुकने का अभ्यास करना चाहिये।

इस आसन से सारे शरीर पर काफी बल पड़ता है अतः जितनी भी देर आसानी से यह आसन होसके, उतनी ही देर इसे करना चाहिये, अधिक देर तक नहीं।

शीर्षासन

इस आसन में सिर के बल खड़ा होना पड़ता है, इसमें सारे शरीर का भार हाथों व सिर पर ही रहता है।

प्रारम्भ अवस्था में इसका अभ्यास दीवाल के सहारे करना चाहिये। ऐसा करने से गिरने का भय नहीं रहता अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता से भी कर सकते हैं। कुछ दिनों के अभ्यास करने के बाद स्वयं ही बिना किसी के सहारे भी खड़ा हुआ जा सकता है।

इस आसन में सिर के बल खड़ा होना पड़ता है इसलिये सिर के नीचे कुछ मुलायम और गुदगुदे कपड़े की इंडुरी बनाकर रख लेना परमावश्यक है। धोती अथवा साफा आदि की भी इंडुरी बनाकर रख सकते हैं। सिर के नीचे कोई भी कड़ी वस्तु या जमीन नहीं होनी चाहिये, अन्यथा इसका मस्तिष्क पर खराब प्रभाव पड़ता है।

विधि—सर्व प्रथम सिर के नीचे कोई गुदगुदी गद्दी या कपड़े की इँडुरी रक्खें। पश्चात अपने दोनों हाथों को कोहनी तक जमीन पर रक्खें और इंडुरी को चारों ओर से हाथों के भीतर करलें, फिर अपने सिर को कपड़े की इंडुरी के ऊपर रक्खें और सिर तथा हाथों पर पूरा बल देकर छाती पेट, पूरे पैर अर्थात् पूरा शरीर ऊपर को आसमान की ओर सीधा उठाने का प्रयत्न करें। जब पूरा शरीर सीधा ऊपर को उठ जावे, तभी शीर्षासन होना समझना चाहिये। हो सकता है कि पूरा शरीर एकदम एक या दो दिन में ऊपर न उठ सके, इसलिये धीरे-धीरे उसका अभ्यास करना चाहिये। दीवाल अथवा दूसरे व्यक्ति की सहातता से करने से इसका शीघ्र ही अभ्यास होने लगता है।

जब शरीर ऊपर उठ कर कुछ-कुछ ठहरने लगे तो धीरे-धीरे अधिक देर तक रुकने का अभ्यास करना चाहिये। प्रथम दो चार दिन तक आधा या एक मिनट तक ही ऊपर ठहरने का अभ्यास करें फिर आधा अथवा एक-एक मिनट क्रमशः बढ़ाते रहने का अभ्यास करें। पश्चात् अभ्यास करते-करते शीर्षासन पर आधे घण्टे तक ठहरने का प्रयत्न करना चाहिये।

शीर्षासन करने के पूर्व तथा शीर्षासन करने के पश्चात दोनों समय दो चार बार प्राणायाम कर लेना अधिक लाभकारी होता है। शीर्षासन के समय श्वास-प्रश्वास से समान रूप होना चाहिये। जितनी देर तक शीर्षासन करें उतनी ही देर तक

ऊपर को दोनों हाथ उठा कर सीधा खड़ा रहना भी आवश्यक हैं। ऐसा करने से रक्त प्रवाह स्वाभाविक रूप में आजाता है।

लाभ—शीर्षासन से अनेक लाभ हैं। इस आसन से सारे शरीर की नस-नाड़ियों का रक्त-संचार भली प्रकार से होने लगता है। शीर्षासन करते समय सारे शरीर का रक्त सिर तथा हाथों की ओर खिंच आता है और शीर्षासन करने के पश्चात सीधा खड़े होने पर फिर रक्त अपने-अपने स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार से रक्त प्रवाह भली प्रकार से होने लगता है और हृदय में बल की वृद्धि होती है।

जिन लोगों का शरीर स्थूल हो और पेट कद्दू की भाँति बाहर की ओर निकला हुआ हो उन्हें शीर्षासन का अभ्यास भली प्रकार से करना चाहिये। इसके अभ्यास से उनका मोटापन दूर हो जायगा तथा पेट भी पचक जायगा और सारा शरीर समान रूप में हो जायगा। इसके अतिरिक्त स्मरण शक्ति का बढ़ना, वीर्य का ऊर्ध्वगामी होना, वीर्य का स्थिर होना आदि कई लाभ होते हैं।

शीर्षासन के कुछ अभ्यासियों का कथन है कि एक वर्ष तक नियम पूर्वक तथा विधियुक्त शीर्षासन करते रहने से सिर के सफेद बाल भी काले होने लगते हैं।

इसके अतिरिक्त छाती की निर्बलता, यकृत, प्लीहा आदि रोगों का भी शमन होता है। इस आसन से नेत्रों को भी काफी लाभ पहुँचता है किन्तु जिनके नेत्रों में अधिक खराबी हो वे इसका अभ्यास थोड़ी-थोड़ी देर तक ही करें। इससे नेत्रों की निर्बलता कम होने लगती है।
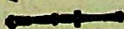
प्राणायाम

प्राणायाम की सरल विधि

प्राणायाम बड़ा तप भाई, प्राणायाम सम बल नहिं कोई ।
प्राणवायु को यह वश लावे, मनको निश्चल कर ठहरावे ॥
आयुर्दा को यही बढ़ावे, तन में रोग रहन नहि पावे ।
मुक्ति मार्ग को यह पहुँचावे चरण दास शुकदेव बतावे ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्

हठयोग में आसन के पश्चात् प्राणायाम का नम्बर आता है, कुछ समय तक सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन या सुखासन का अभ्यास होजाने पर साधकों को सरल प्राणाथाम की विधि से आगे कुछ प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये कारण कि आसन प्रमुख रूप से हमारे शरीर को निरोगी बनाने में परम सहायक सिद्ध होते हैं। मन को स्थिर करने के लिये प्राणायामका अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे अग्नि सुवर्ण चाँदी आदि धातुओं के दोषों को जला कर उन्हें निर्मल और सुन्दर बना देती है, उसी प्रकार प्राणायाम हमारे शरीरगत सप्त धातुओं के दोषों को समाप्त करके मन को निर्मल बना देता है। सभी सन्त-महात्मा और विज्ञजन जानते हैं कि प्राण और मन का आधार-आधेय का सम्बन्ध है। जिस प्रकार मोटर के रुकते ही ड्राइवर रुक जाता है अथवा ड्राइवर के रुकते ही मोटर रुक जाती है उसी प्रकार प्राण के ठहरते ही मन ठहर जाता है और मन के स्थिर होते ही प्राण की गति मन्द हो जाती है इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। अतएव मन को

शमन करने के लिये नित्य सविधि प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। हमारे पूर्वज ऋषियों ने इसीलिये त्रिकाल संध्योपासन में द्विजाति मात्र के लिये प्रतिदिन तीन प्राणायाम अनिवार्य रूप से करने के लिये बतलाये हैं। प्रत्येक भारतीय दिन में तीन बार इस जीवन-दायिनी सुधामयी प्राणायाम की क्रिया करके अपने तन और मन को स्वस्थ बनाया करता था; किन्तु आज पाश्चात्य जगत के भौतिकवाद की प्रमादमयी मदिरा में उन्मत्त होकर युवकों ने अपने ऋषि मुनियों के नित्य प्राप्त होने वाले अमृत को भुला रक्खा है। आज अपने देशवासी अपनी घर की विद्या से लाभ नहीं उठा रहे हैं। अब जागो, उठो, देखो तुम्हारे घर में कितने अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। एक बार समाहित चित्त होकर उनको जानो और उनको उपयोग में लाओ। फिर उन्नति हाथ पसारे हुए तुम्हें सम्मुख खड़ी मिलेगी। विधि पूर्वक प्राणायाम करने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। यद्यपि आज प्राणायाम का उतना प्रचार नहीं है। साथ ही कुछ अनुभवहीन व्यक्तियों से सीखे हुए अथवा स्वयं ग्रन्थों से पढ़कर अभ्यास करने से साधक रोगी हो जाते हैं; फिर वे प्राणायाम को दोष देने लगते हैं किन्तु यह प्राणायाम का दोष नहीं है अपितु उनका यह स्वयमेव प्रमाद है। क्या मोटर ड्राइवरी न जानने वाला कोई भी व्यक्ति उसे चला कर गंतव्य स्थान पर निरापद पहुँचने के बजाय अपने आपको मोटर सहित मार्ग में ही संकट में क्या नहीं डालेगा? अवश्य ही डालेगा। अब कहिये क्या यह मोटर

संचालन विद्या का दोष है अथवा उसकी अपनी अज्ञानता का ? अपने यहाँ योगशास्त्र में प्राणायाम के आठ भेद बतलाये गये हैं। किस साधक को किस ऋतु में कौन विधि से कब प्रणायाम करना चाहिये इत्यादि बातों को जाने बिना प्रणायाम से साधकों को यथावत् लाभ नहीं प्राप्त हो सकता। जिस प्रकार रोगी के बलाबल के अनुसार औषधि का प्रयोग करके चतुर वैद्य किसी रोगी को रोगमुक्त कर सकता है, उसी प्रकार साधक भी अनुभवी गुरु से सब बातें जानकर ही प्राणायामसे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है। इस सम्बन्ध में प्रणायाम के अष्ट प्रकार के भेदों को समझ लेना आवश्यक है। भेदन, चंद्र-भेदन, उज्जायी, भ्रामरी, शीतली, शीतकारी, भस्त्रिका, केवली, कुम्भक इस प्रकार हठयोग के ग्रन्थों में प्राणायाम के आठ भेद बतलाये गये हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में उन सभी प्रकार के प्राणायामों को सर्वसाधारण के लिये उपयोगी न समझकर केवल नित्य काम में आने वाली प्राणायाम की सरल विधि पाठकों को बतलायी जा रही है। प्रत्येक साधक को प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात् किसी पवित्र और स्वच्छ स्थान में सूर्य उदय से प्रथम प्राणायाम के लिये आसन बिछाना चाहिये। आसन के सम्बन्ध में जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने प्रिय भक्त अर्जुन को बतलाया है—

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैशाजिनकुशोत्तरम् ॥

अर्थात् पवित्र देश में पहले कुशासन बिछाकर उस पर मृग-चर्म अथवा ऊनी आसन बिछाने के बाद उस पर श्वेत वस्त्र बिछाना चाहिये। प्रातःकाल पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर सायंकाल को पश्चिम की ओर अथवा उत्तर की ओर सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सुखासन इन चारों आसनों में से किसी भी अभ्यस्त आसन को विधि पूर्वक लगाकार एकाग्रचित्त करके बैठना चाहिये। बैठने में श्री गीता जी के अनुसार (अ० ६, श्लोक नं० १३)—

समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः

शरीर को न ढीला न बहुत कड़ा करके समभाव रख कर सिर, ग्रीवा और मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए स्थिर होकर प्राणायाम करना चाहिये।

प्रथम पेट की सारी वायु नासिका द्वारा बाहर निकाल देना चाहिये। तत्पश्चात् बायाँ या दाहिना जो भी स्वर चलता हो उससे दूसरी ओर के स्वरको अंगूठा या अनामिका और कनिष्ठिका अँगुली से बन्द करते हुए धीरे-धीरे वायु भरते हुए पूरक करना चाहिये। शनैः शनैः वायु भरते हुए पेट के निचले भाग में तथा मध्य में और ऊपर हृदय तक पूरक कर लेने की भावना करनी चाहिये फिर जैसे कुम्भ जल से ऊपर तक पूरा भर लिया जाता है, उसी प्रकार सर्वाङ्ग में वायु भर जायगी। इसीलिये इस भरने की क्रिया को पूरक और भरकर स्थित हो जाने की क्रिया को कुम्भक कहते हैं। चित्त में घबड़ाहट न पैदा होने पावे इसलिये शक्ति के अनुसार पूरक रेचक करना चाहिये। इसका क्रम यह है कि पूरक करते हुए

जितना समय लगे अथवा जितने बार मंत्र जपा जाय उससे चौगुने समय तक कुम्भक होना चाहिये और पूरक के दूने समय रेचक (वायु निकालना) करना चाहिये। इस प्रकार पूरक, कुम्भक, रेचक इन तीनों को करने से एक प्राणायाम होता है। कम से कम सभी साधकों को उपर्युक्त विधि से तीन प्राणायाम अवश्य ही करना चाहिये। यह प्राणायाम की विधि बिल्कुल सरल है। इसे सभी लोग सभी ऋतुओं में कर सकते हैं। साधकों को इससे कोई हानि की सम्भावना नहीं है। इसके अतिरिक्त एक अत्यन्त लाभकारी प्राणायाम की विधि का जिससे कि कुम्भक की शक्ति बढ़ती जाती है तथा शरीर में प्राण अपान की गति समान होजाती है, शरीर में तत्काल ही शक्ति तथा स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है, उल्लेख किया जारहा है।

विधि—ऊपर लिखी हुई विधि से आसनादि की व्यवस्था कर लेने के बाद साधकों को स्वस्थ चित्त से बैठ कर प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिये।

नासिका के दोनों स्वरों में से जो स्वर चलता हो उससे धीरे-धीरे वायु पेट में भरना चाहिये। भरते समय नासिका के दूसरे स्वर को अंगुली या अँगूठा लगाकर बन्द करना चाहिये। वायु भर लेने (पूरक) के बाद तत्काल ही दूसरी ओर के स्वर से जो कि पूरक करते समय बन्द था, उसी से धीरे-धीरे वायु निकाल देना अर्थात् रेचक कर देना चाहिये। पुनः उसी स्वर से जिस स्वर से वायु निकाली है, उसीसे फिर वायु धीरे-धीरे भर

लेनी चाहिये। तत्पश्चात् फिर दूसरी ओर के स्वर से वायु धीरे-धीरे निकाल देनी चाहिये। इस प्रकार आठ बार पूरक रेचक करने के बाद फिर नवीं बार पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक कर लेना चाहिये। यह ध्यान रहे कि वायु रोके रहने में जब तक घबड़ाहट पैदा न हो, तभी तक कुम्भक लाभदायक होता है। घबड़ाहट के बाद भी बल पूर्वक कुम्भक किये रहने में हानि होने की सम्भावना रहती है। अन्त में कुम्भक के बाद रेचक करते समय धीरे-धीरे पेट खलाते हुए, नाभि को पीठ की ओर खींचने का प्रयत्न करना चाहिये। जब पेट की सम्पूर्ण वायु निकल जाय और पेट पीठ में मिला जान पड़े तब कुछ देर तक उसी अवस्था में स्थित रहकर फिर अन्त में वायु निकाले हुए स्वर से ही पुनः उसी प्रकार पूरक करना चाहिये। पूरक करते समय गुदा को आकुञ्चन अर्थात् ऊपर को आकर्षण करने से मूल-बन्ध होता है और कुम्भक कर लेने के पश्चात् अपनी ठोढ़ी को हृदय की ओर झुका कर कण्ठकूप के समीप दृढ़ता से लगाये रहने से जालन्धर बन्ध होता है और अन्त में बहुत धीरे-धीरे रेचक करते हुए नाभि और पेट को पीठ की ओर खज़ाते हुए सम्पूर्ण वायु के निकल जाने के पश्चात् पेट को उसी अवस्था में कुछ समय तक रखने से उड्डियान बन्ध सिद्ध होता है। इन तीनों बन्धों को विधिपूर्वक थोड़ा सा भी अभ्यास करने से अनेक लाभ होते हैं। इस प्रकार कम से कम तीन या पाँच प्राणायाय करने से साधकों को वह लाभ प्राप्त होगा, जिसका कथन नहीं किया जा सकता। मन की चञ्चलता तत्काल ही

मिट जाती है। चित्त में अपूर्व शान्ति प्रतीत होती है। बिगड़े हुए प्राण-अपान अपनी समगति में आजाते हैं। शरीर में नूतन बल तथा नवीन स्फूर्ति का भान होने लगता है। सारे शरीर का रक्त शुद्ध होने लगता है। पंच प्राण अपने-अपने स्थान पर ठीक-ठीक कार्य करने लगते हैं। काम विकार शान्त होजाता है दिन में अधिक समय तक सतोगुण बना रहता है। परमार्थ पथ में आगे बढ़ने का नित्यप्रति उत्साह बढ़ता जाता है। शरीर निरोग होने से भूख बढ़ती है। उदर विकार शान्त होजाता है तपेदिक जैसे भयानक रोग भी धीरे-धीरे शान्त होने लगते हैं। कहाँ तक कहा जाय, इसके करने से अपार लाभ होते हैं। इसको विधि पूर्वक सीख कर साधकों को इसका अवश्य ही अभ्यास करना चाहिये। अन्त में इसके सम्बन्ध में कुछ आवश्यक नियम साधकों की ओर बतलाये जाते हैं जिनका पालन करना अत्यावश्यक है।

१—प्रत्येक अभ्यासी को भोजन सात्विक तथा नियत समय पर करना चाहिये। भोजन कर लेने के पश्चात् पेट ऐसा हलका रहे कि भारीपन न मालूम पड़े ऐसा भोजन करना चाहिये।

२—लहसुन, प्याज, अखाद्य पदार्थ, अभक्ष्य भोजन का बिलकुल परित्याग करना होगा। बल के अनुसार उचित मात्रा में दूध और घी का सेवन करना चाहिये।

३—मादक द्रव्य, शराब, भाँग, चरश, गाँजा, ताड़ी, अफीम तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि का पूर्णतः परित्याग करना पड़ेगा

४—गृहस्थों को गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य विधि से ब्रह्मचर्य का पालन अत्यावश्यक है। गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य विधि "ब्रह्मचर्य-साधन" नामक पुस्तक अथवा परमार्थ पत्र के विशेषाङ्क "ब्रह्मचर्याङ्क" से भली प्रकार ज्ञात हो सकेगी।

५—प्राणायाम का अभ्यास नितान्त स्वच्छ वायु में सूर्योदय के एक घंटा पूर्व निश्चित स्थान पर करना चाहिये। उस स्थान पर पहले कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों को सुलगा कर वहाँ के वातावरण को शुद्ध, सुन्दर और सुखदायक बना लेना चाहिये।

६—नेत्र पीड़ा, सिर पीड़ा, ज्वर अथवा खाँसी, दमा—श्वास के प्रकोप में प्राणायाम वर्जित है। अभ्यास के पहले तथा बाद में कठिन परिश्रम नहीं करना चाहिये और न तत्काल भोजन ही कर लेना चाहिये। स्त्रियों को गर्भावस्था में प्राणायाम वर्जित है।

७—अभ्यास के पश्चात् बहुत शान्त चित्त से बैठ कर कुछ देर भगवन्नाम-जप अथवा ध्यान किंवा परमार्थ का मनन करना चाहिये।

८—जो बात समझ में न आवे, वह पहले अनुभवी व्यक्ति से भली प्रकार समझ कर तब अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये।

९—अभ्यास काल में यथाशक्ति भावना पवित्र रखनी चाहिये। नित्य सत्संग प्राप्त हो तो बहुत ही अच्छा है; अन्यथा साप्ताहिक सत्संग भी करते रहना चाहिये।

प्राणायाम के भेद

शास्त्रकारों ने प्राणायाम के नव प्रकार बताये हैं-अनुलोम-विलोम, सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली. भस्त्रा, भ्रमरी मूर्छा और प्लाविनी। प्राणायाम की उत्तम*अवस्था में प्रवेश होने तक (१) अनुलोम-विलोम प्राणायाम हितकारी है जिसकी विधि पृष्ठ ६६ में बतायी जा चुकी है।

(२) सूर्यभेदी—पहले थोड़ा रेचक करके सूर्य नाड़ी (दाहिने नासापुट) से पूरक करें। फिर कुम्भक करके चन्द्र नाड़ी (बायें नासापुट) से रेचक करें। विलोम की भांति इसमें भी मूलबंध, जालन्धर वन्ध और उड्डीयान बन्ध लगाना आवश्यक है; परन्तु उसमें और इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि उसमें (अनुलोम-विलोम में) दोनों नासापुटों से पूरक और रेचक होता है और इस सूर्य भेदी में केवल दाहिने नासापुट (सूर्य-नाड़ी) से ही पूरक तथा चन्द्र नाड़ी (बायें नासापुट) से रेचक होता है।

दक्षिण फुफ्फुस का सम्बन्ध यकृत से होने से इस प्राणायाम से पित्तवृद्धि होती है तथा उष्णता बढ़ती है, जिससे बात और कफ का प्रकोप शान्त होता है। इस प्राणायाम को गर्मी के दिनों में करना उचित नहीं है तथा पित्त प्रधान प्रकृति के लोगों

---

* कुम्भक के समय भेद से प्राणायाम की तीन अवस्थाएँ होती हैं। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम, यथा—

प्राणायाम	पूरक	कुम्भक	रेचक	वाह्य कुम्भक
(१) कनिष्ठ	४	१६	८	१ सेकण्ड में
(२) मध्यम	६	३२	१० से १२	२ „ „
(३) उत्तम	८	५०	१२ से १६	३ „ „

के लिये भी हितकर नहीं है।

(३) उज्जायी—मुख को कुछ झुकाकर कण्ठ से हृदय पर्यन्त शब्द करते हुए वायु को फुफ्फुस में प्रविष्ट करे। इस प्रकार दोनों नासापुट से अल्प परिमाण में वायु को खींच, फिर पूरक करने के बाद ४-५ सेकण्ड कुम्भक करके इड़ा नाड़ी से रेचक करें। प्राणायाम में पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों स्वल्प परिमाण में ही किये जाते हैं। इसमें जालन्धर आदि बन्धों का लगाना भी उतना आवश्यक नहीं होता। बैठे, चलते, खड़े या लेटे हुए भी इस प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। जब शारीरिक विकार के कारण दूसरे प्राणायाम न हो सकें और समय अनुकूल न हो तो एक घन्टे के लगभग उज्जायी प्राणायाम करना चाहिये। इससे कफ-प्रकोप, उदर-रोग, जलोदर शोथ, मन्दाग्नि अजीर्ण, धातुओं के विकार और मलावरोधजनित समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

(४) सीतकारी—दाँतों के बीच जिह्वा को बाहर ओष्ठ तक निकाल कर ओष्ठों को फुलाकर मुख से सीत्कार करते हुए वायु का आकर्षण करना सीत्कारी प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम में वायु जिह्वा के सहारे भीतर प्रवेश करता है। इसमें ४-५ सेकण्ड कुम्भक करके दोनों नासापुटों से शनैः शनैः रेचक करना चाहिये। इसमें भी बन्धों का लगाना आवश्यक नहीं होता, परन्तु यदि अधिक देर तक कुम्भक करना हो तो बन्ध का लगाना आवश्यक हो जाता है।

इस प्राणायाम से यकृत में पित्त के उत्पन्न करने की क्रिया तक होजाती है। इससे क्षुधा, तृषा, निद्रा और आलस्यादि का त्रास कम होजाता है। पित्त प्रकोप शमन होता है और शरीर तेजस्वी बनता है।

शीतली—जिह्वा को ओष्ठ से एक अंगुल बाहर निकाल कर पक्षी की चोंच के समान आकृति बनाकर बाहर से वायु का आकर्षण करे। फिर कुछ कुम्भक करके दोनों नासापुटों से धीरे-धीरे रेचक करे। यह शीतली प्राणायाम कहलाता है। शीत काल और कफ प्रकृति के लिये यह प्राणायाम हितकर नहीं है। प्रातः सायं आधे घण्टे तक इसका अभ्यास करना चाहिये।

इससे गुल्म, प्लीहा, उदर रोग; अतिसार, पेचिश; पित्तवृद्धि दाह, अम्लपित्त क्षुधा; तृषा उन्माद आदि रोग शमन होते हैं।

भस्त्रा—पद्मासन से बैठकर बायें नासापुट का वेग से पूरक करे और बिना कुम्भक किये ही आवाज करते हुए दाहिने नासापुट से रेचक करे। लोहार की धौंकनी के समान वेग पूर्वक इसी भाँति आठ बार पूरक-रेचक कर, नवीं बार पूरक करके कुम्भक करे और दृढ़ जालन्धर-बन्ध लगावे। फिर दाहिने नासापुट से शनैः शनैः रेचक करे। रेचक करने से पहले ही जालंधर बन्ध खोल दे और उड्डीयान बन्ध लगा ले। इसके बाद तीन सेकण्ड बाह्य कुम्भक करके उपर्युक्त विधि से आठ बार वाम नासापुट से रेचक करे और पुनः नवीं बार दक्षिण पुट से पूरक करके कुम्भक करे। तत्पश्चात् नियमानुसार रेचक करे। ये दो प्राणायाम हुए – इस प्रकार सव्यापसव्य १२ प्राणायाम करने चाहिये।

इस प्राणायाम से कुम्भक बहुत बढ़ जाता है; परन्तु इससे अधिक नहीं करना चाहिये। इससे त्रिधातु विकृति से उत्पन्न सब रोग नष्ट हो जाते हैं, अग्नि प्रदीप्त होता है सुषुम्नास्थिति के सब मल नष्ट होजाते हैं। ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि और रुद्र ग्रंथि तीनों का भेदन होकर सुषुम्ना में से प्राणतत्त्व विहंगम गति से ऊर्ध्वगमन करने लगता है।

भ्रामरी—सिद्धासन लगा कर नेत्र बन्द करलें और भ्रू में लक्ष्य रक्खें तथा जालन्धर बंध लगालें। इस प्राणायाम में जालन्धर बंध बराबर लगा रहना चाहिये। फिर दोनों नासापुटों से भ्रमर के नाद के समान स्वर सहित पूरक करे। फिर तीन सेकण्ड कुम्भक करके शनैः शनैः आवाज सहित रेचक करे। इस प्रकार १४४ प्राणायाम करे। इस कुम्भक में पाँच अवस्थाएँ हैं। इस प्राणायाम की क्रिया के बाद नाद बहुत जोर से उठता है; इसीलिये मन की एकाग्रता शीघ्र होती है।

मूर्छा—भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास पूर्ण होने पर सिद्धासन में बैठकर दोनों नासापुटों से पूरक करके जालन्धर बंध लगाना चाहिये। फिर दोनों कान, नेत्र, नासिका और मुँह पर क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को रख कर ६ सेकण्ड कुम्भक करें। इसके पश्चात् नासिका के छिद्र पर से अनामिका को शिथिल कर जालन्धर बन्ध रखते हुए ही शनैः-शनैः दोनों नासापुटों से रेचक करें। दूसरे प्राणायामों के साथ मूर्छा प्राणायाम करने से कुम्भक अधिक होता है, परन्तु रेचक दोनों नासापुटों से किया जाता है। अधिक कुम्भक के लिये उड्डियान बन्ध लगाया जाता है तथा रेचक के समय जालन्धर बन्ध खोल दिया जाता है।

इस प्राणायाम में रेचक के समय बंद नेत्र से भ्रूस्थान में प्राणतत्त्व का श्वेत, नीला, काला और लाल प्रकाश दिखने में आता है। इस प्राणायाम को एक बार कर लेने पर भ्रामरी वाले सिद्धासन से बैठकर तथा अन्य प्राणायाम वाले शवासन में लेटकर भी नादानुसंधान करते हैं।

प्राणायामों का उपरोक्त वर्णन यद्यपि शास्त्र-सम्मत एवं अनुभूत है फिर भी साधकों को केवल पुस्तक पढ़कर बिना योग्य एवं अनुभवी गुरु से सीखे कोई क्रिया नहीं करनी चाहिये।

सूर्य नमस्कार की उपयोगिता

शरीर को स्वस्थ और सबल बनाने के लिये व्यायाम एक आवश्यक क्रिया है। शरीर के बाह्य अङ्गों को सुडौल और सुन्दर बनाने के निमित्त अनेक प्रकार के प्रयोग अपने-अपने अनुभव के आधार पर अनुभवी जनों ने बताये हैं; किन्तु शरीर के आन्तरिक अवयवों और नस-नाड़ियों को शुद्ध बनाने के लिये आसन या सूर्य नमस्कार ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त जैसी सुगमता आसन या सूर्य नमस्कार के व्यायामों में है वैसी सुगमता अन्य में नहीं। व्यायाम तो ऐसा होना चाहिये जो स्त्री पुरुष, धनी-निर्धन, बाल-युवा, वृद्ध सभी के लिये उपयुक्त हो। दण्ड-बैठक मुगदर, डंबल, दौड़, तैराकी,

टहलना आदि सभी व्यायाम के अंग हैं; किन्तु परिस्थिति के अनुसार इस प्रकार के व्यायाम सब लोग कर भी नहीं सकते इसके अतिरिक्त जैसा आन्तरिक लाभ चाहिये वैसा उपर्युक्त प्रकार की व्यायाम प्रणालियों में सम्भव नहीं। अन्यान्य व्यायामों की अड़चनों और असुविधाओं को देखते हुए आसन या सूर्य नमस्कार की प्रणाली ही अधिक उत्तम, सर्वांगपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुई है।

आसन या सूर्य नमस्कार की प्रणाली को अपनाने वाले सज्जनों को यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये कि जिस दिन वे आसन का व्यायाम करें, उस दिन सूर्य नमस्कार का व्यायाम न करें, और जिस दिन सूर्य नमस्कार करें उस दिन आसन कदापि न करें, अन्यथा हानि होने की सम्भावना है; क्योंकि दोनों प्रणालियों में परस्पर विभिन्न रूप से रक्त का संचालन होता है। अतएव इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

आठ वर्ष की आयु से ही बालक को अभ्यास कराने से जो लाभ होते हैं, वे अनन्त हैं। बाल्यावस्था से अभ्यस्त जनों का स्वास्थ्य आजीवन सुन्दर और आकर्षक बना रहता है। साधारणतया स्वस्थ स्त्री पुरुषों को नीचे लिखे अनुसार सूर्य-नमस्कार करने का क्रम निर्धारित करना चाहिये—

८ वर्ष से १२ वर्ष की आयु तक २५से५० तक नमस्कार करे
१२ वर्ष से १६ वर्ष की आयु तक ५० से १०० तक नमस्कार करे।

सोलह वर्ष की आयु के आगे अपनी शक्ति के अनुसार

नित्य क्रम से बढ़ाते हुए तीन सौ तक सूर्य नमस्कार किये जा सकते हैं। प्रत्येक परिस्थिति में संयम और आहार-विहार को भी नियमित रखने से ही मन चाहा लाभ हो सकता है। साठ वर्ष की अवस्था के बाद भी अपनी शक्ति के अनुसार आमरण यह व्यायाम किया जा सकता है।

नियमित रूप से आसन या सूर्यनमस्कार का व्यायाम उपयोगी सिद्ध हो सकता है। कभी एक साथ अधिक कर डालना कभी बिलकुल कम और कभी बिल्कुल नहीं, ऐसा होने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो सकती है। अतएव इस बात की सावधानी मुख्य रूप से रखनी चाहिये कि दैनिक क्रम भंग न होने पावे। धीरे-धीरे क्रम से बढ़ाने में अधिक लाभ रहेगा।

सूर्यनमस्कार में मन्त्र प्रयोग के लाभ

कुछ लोगों का मत है कि चुपचाप मौन रहकर ही व्यायाम करना श्रेयस्कर है; किन्तु अब अनेक अनुभवी जनों ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालकर सिद्ध कर दिया है कि मन्त्रों के प्रयोग से अत्यधिक लाभ होता है। मंत्रों के प्रयोग से शारीरिक और मानसिक आरोग्य लाभ तत्काल होता है, ऐसा एक आस्ट्रियन शास्त्रज्ञ लेबर लेआरियो ने अपने अनुभव से एक लेख में लिखा था। प्रणव और बीज मंत्रों के सम्मिलित उच्चारण से कुछ दिनों में ही शरीर के भीतरी भागों पर कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है, यह निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट होजाता है—

१—ऊँचे स्वर से ॐ का उच्चारण करने से सभी अन्तः इन्द्रियों को विशेष कर मस्तिष्क, हृदय और अमाशय को विशेष बल मिलता है।

२—"ह्राँ" के उच्चारण से मस्तिष्क, हृदय, पेट, श्वास-नलिका, कंठ और फेफड़ों में शक्ति का संचार होता है।

३—"ह्रीं" के उच्चारण से कंठ, हृदय, श्वास नलिकाएँ और पाचनेन्द्रिय बलवान बनती है।

४—"ह्रूँ" से यकृत, तिल्ली, अमाशय, आतें, उदर और उपस्थ या गर्भाशय को बल मिल जाता है।

५—"ह्रैं" के उच्चारण से मूत्राशय शुद्ध होजाता है।

६—"ह्रौं" का उच्चारण मूत्राशय पकाशय और अमाशय चारों को बल प्रदान करता है, कोष्टबद्धता की शिकायत नहीं रहती है।

"ह्रः" से छाती, गला और अन्ननलिका सुदृढ़ बन जाती है।

प्रणव और मंत्रों सहित सूर्यनमस्कार करने से बहुत आश्चर्यजनक लाभ होते देखे गये हैं। बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ, सहनशीलता मनोबल, इच्छाशक्ति, आत्मविश्वास धैर्य आदि दैवी गुणों का भी अद्भुत समावेश होजाता है, अन्य प्रकार की व्यायाम प्रणाली से ऐसे लाभ होने की सम्भावना नहीं। इसलिये हमारे पूर्वज मनीषियों ने आसन अथवा सूर्य नमस्कार की प्रणाली को अपनाया था; क्योंकि इनमें वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के लाभ स्पष्ट रूप से सन्निहित जान पड़ते हैं।

सूर्य नमस्कार की तैयारी

सूर्य नमस्कार का व्यायाम प्रारम्भ करने से पूर्व स्नानादि से निवृत्त होकर स्वच्छ होजाना आवश्यक है। सूर्योदय से पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में किया गया व्यायाम अधिक लाभप्रद होगा। प्रारम्भ करने से पहले अपने मन से हर प्रकार के कुविचारों को निकाल कर शुभ संकल्प भरने चाहिये।

लंगोट या हल्का अँगौछा पहन कर बाकी शरीर खुला रक्खें। शीतकाल में किसी कमरे में और ग्रीष्मकाल में किसी खुले स्थान पर सूर्य नमस्कार करना चाहिये। स्त्रियाँ हल्की साड़ी और ढीली चोली पहन कर यह व्यायाम कर सकती हैं। व्यायाम से पूर्व किसी प्रकार का जलपान या भोजन हानिकारक है। सूर्योदय से लगभग १॥ घण्टा पूर्व शय्या परित्याग कर शौचादि से निवृत होकर स्नान करके ही इस व्यायाम का नियम यदि बना लिया जावे तो बहुत लाभ होगा। उस समय का वातावरण बहुत शान्त रहता है। वातावरण का प्रभाव शरीर और मन पर उस समय बहुत अच्छा पड़ता है। सूर्य नमस्कार को समाप्त करके दस बीस मिनट विश्राम करने में कोई हानि नहीं। यदि सम्भव हो तो व्यायाम और कुछ विश्राम के बाद सूर्य भगवान की बाल किरणों को अपने खुले शरीर के प्रत्येक अंग पर डालें तो उन सर्वरोगनाशिनी

और अमृतमयी किरणों का आश्चर्यजनक लाभ आपको स्वयं ही प्रतीत होगा।

बहुत से व्यक्तियों को यह भ्रम रहता है कि यदि अधिक व्यायाम किया जाय, तो अधिक लाभ होगा; किन्तु ऐसी बात नहीं है। प्रत्येक व्यायाम अपनी शक्ति की सीमा के भीतर ही करना लाभदायक होता है। हाँ, वह क्रम से नित्य प्रति धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। शक्ति के बाहर व्यायाम करना बहुत बड़ी भूल है। व्यायाम के पश्चात् थोड़ा सा विश्राम कर लेने पर एक नयी स्फूर्ति और उत्साह का अनुभव होता है।
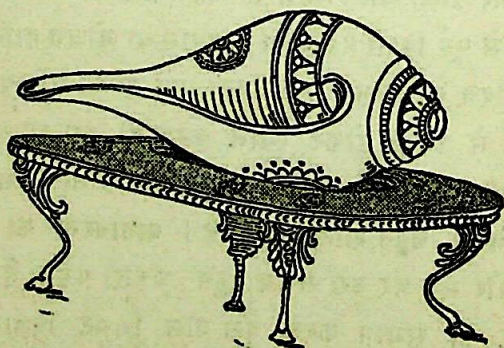
* सूर्य नमस्कारों के आसन *

प्रत्येक नमस्कार में दस आसन होते हैं।

अवस्थानं जानुनासं ततश्चोर्ध्वनिरीक्षणम् ।
वपुस्तुलितपूर्वं च साष्टांगं नमनं परम् ॥ १ ॥
पृष्ठं कशेरु संकोचं कशेरोर्विस्तरस्ततः ।
पुनरूर्ध्वेक्षणादीनां व्युत्क्रमः क्रमशो भवेत् ॥ २ ॥
इत्येतैरासनैः कुर्यात् सूर्यस्योपासनं नरः ॥ ३ ॥

प्रथम आसन—अवस्थान

दोनों पैरों को जोड़ कर सीधे तन कर खड़े होजाओ। दोनों हाथ मिला कर छाती सामने निकालो, पीठ सीधी रहनी चाहिये। पैरों की उँगलियाँ मिली रहें। हाथ छाती पर जुड़े हुए, एक दूसरे से दबे हुए हों। हाथ के अँगूठे छाती के बीच गड्ढे में टिकाकर, चारों उँगलियाँ मिला कर दूर फैलाओ पेट जितना

बन सके, भीतर पीठ की ओर लेजाओ। लम्बी साँस खींचकर फेफड़े फुलाओ। दृष्टि नासिकाग्र में स्थिर करो। "सम काय शिरो ग्रीवम्' अर्थात् शरीर, गर्दन और मस्तक एक रेखा में सीधे तने हुए रहें।

यदि सम्भव हो तो बड़ा आईना सामने रक्खो। इस प्रयोग से बहुत लाभ होता है, साथ ही आपको कन्धे, शिर आदि सीधा रखने में सहायता मिलेगी। शरीर के किस भाग पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है, नित्यप्रति शीशे में देखने से आपकी इच्छाशक्ति प्रबल होगी, शीघ्र ही विशेष लाभ की प्रतीति होती जायगी, किसी क्रिया में भूल होने पर सुधार भी होता जायगा।

सीधे नासिकाग्र में दृष्टि जमाये हुए, स्थिर चित्त होकर 'ॐ ह्रां मित्राय नमः' ऊँचे स्वर में कहो, फिर मुख बन्द करलो, बाद में पूरक करो (मुख बन्द करके लम्बी श्वांस भीतर खींचने को पूरक कहते हैं) अर्थात् ध्वनि सहित लम्बी साँस खींचो और फिर कुम्भक करो (खींची हुई वायु को भीतर रोकने की क्रिया को कुम्भक कहते हैं) कुम्भक किये हुए ही सूर्य नमस्कार का दूसरा आसन प्रारम्भ होगा।

लाभ – इस नमस्कार से पैर कमर, उदर, भुजाएँ, अँगुलियाँ सीना और गर्दन इन सब पर जोर पड़ता है। यहाँ तक देखा गया है कि जिन लोगों के पैर टेढ़े थे उन्हें भी इस व्यायाम से लाभ हुआ अर्थात् उनके पैर सीधे होगये। हथेलियाँ परस्पर दबी रहने से भुजाओं के पृष्ठ भाग में स्नायु सबल बनते हैं। गर्दन के पुट्ठे और गले का भी व्यायाम होजाता है और जठराग्नि प्रदीप्त होकर कोष्ठ बद्धता को नष्ट करती है।

द्वितीय आसन—जानुनास

प्रथम आसन की स्थिति में रहकर कुम्भक किये हुए ही नीचे झुको किन्तु घुटने तने रहें। हाथों के पंजे, एड़ियों की सीध में नीचे इस प्रकार रखो कि अंगुलियाँ तो मिली रहें, अँगूठे दूर रहें। इसी स्थिति में रहकर नासिका या मस्तक को घुटनों में लगाओ और ध्वनि सहित रेचक करो (कुम्भक द्वारा) रोकी हुई भीतर की वायु को मुख बन्द किये हुए नासिका द्वारा वायु बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक से एक प्राणायाम पूरा होता है। भीतरी पेट खलाने में इस आसन के करने में सरलता रहती है और कुम्भक तथा रेचक भी सुगमता से होजाते हैं। यह आसन धीरे-धीरे ठीक होने लगेगा पहले हाथ के पंजे पैरों की उँगलियों की सीध में रखने से भी काम चल जायगा। धीरे-धीरे क्रम से अभ्यास करते हुए एड़ियों को समानान्तर रेखा में लाने का अभ्यास करते रहना चाहिये। इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि हथेलियाँ एड़ी की सीध में रहें अथवा पैर के अंगूठों की सीध में तो अवश्य रहें। प्रारम्भ में इस आसन के करने में कठिनाई का अनुभव

होगा किन्तु धीरे-धीरे ठीक होने लगेगा, इसलिये हताश नहीं होना चाहिये। जो व्यक्ति घुटने न झुकाकर हाथों से पैरों की उँगलियाँ छू सकता हो, उसे इस आसन के करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। पहले हाथ के पंजों को सीधा रखकर तब घुटने सीधे करने का प्रयत्न ठीक रहेगा। घुटने सीधे ताने हुए रखकर नासिका या मस्तक घुटनों में लगाओ।

लाभ—इस आसन से पेट और पीठ के स्नायु, आँतें नितम्ब, जाँघों का पिछला भाग, पिंडलियाँ हथेलियाँ और उँगलियाँ इन सभी पर जोर पड़ता है। कन्धों के जोड़ों पर विशेष बल पड़ता है, अतएव इन सभी का व्यायाम भली प्रकार से हो जाता है। नाभि के पास वाले तन्तुजाल को भी उत्तेजना मिलकर उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

तीसरा आसन—ऊर्ध्वेंक्षण
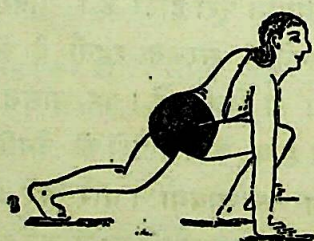
दूसरी स्थिति में रक्खे हुए हाथ और बाएँ पैर को वैसे ही रखकर नासिका से ध्वनि सहित पूरक करके एक पैर पीछे, जितना ले जासको, उतना घुटना और पैरों की उँगलियाँ पृथ्वी

पर लगाओ। दूसरे पैर का घुटना काँख के नीचे भुजा के सामने लगाओ। मस्तक पीछे की ओर लेजाओ और स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखो। पीठ और कमर झुकाओ। यथासंभव कुम्भक करो। इस आसन में पहले दाहिना, फिर बायाँ पैर बदल कर आगे पीछे ले जाना चाहिये। इस प्रकार दोनों पैरों से व्यायाम होजाता है।

लाभ—इस आसन से पैरों के पंजे, कमर, पीठ, गर्दन और गले का अच्छा व्यायाम होजाता है। दाहिना पैर पीछे ले जाने पर बायें जंघा से प्लीहा (तिल्ली) पर दबाव पड़ता है और बायाँ पैर पीछे ले जाने पर यकृत (जिगर) पर प्रभाव पड़ता है। इसलिये प्लीहा और जिगर से होने वाले रोगों का भय नहीं रहता। दोनों जंघाओं के तनाव से उसकी नस नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।

चौथा आसन—तुलितवपु
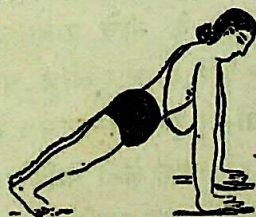
तीसरी स्थिति में रहते हुए, कुम्भक बनाये रखकर बायाँ मुड़ा हुआ पैर पीछे ले जाकर दाहिने पैर से मिलाओ। एड़ियाँ पंजों के बल पर ऊपर उठी रहें। दोनो भुजायें एक सीध में

रहें। सिर का पिछला भाग, पीठ और एड़ी एक रेखा में स्थित हों, शरीर को हथेलियों और पंजों पर साधो।

लाभ—पैरों की उँगलियों, हथेलियों और भुजाओं पर सारे शरीर का संतुलन रहने से हाथ पैर, भुजाओं और गर्दन का अच्छा व्यायाम होने से इन सबके स्नायु तन्तुओं को पर्याप्त बल मिल जाता है।

पाँचवा आसन—साष्टांग

कुम्भक किये हुए चौथी स्थिति से घुटनों को जमीन पर लगाओ। हथेलियाँ और पैर ज्यों के त्यों बने रहें। ठोड़ी और गले के नीचे वाले भाग को पृथ्वी से लगाने का प्रयत्न करो। नासिका को जमीन से न लगा कर मस्तक पृथ्वी पर लगाओ और एक साथ छाती के नीचे वाला भाग भी जमीन से लगाओ। पेट ऊपर पीठ की ओर खींचो, पृथ्वी से पेट का स्पर्श न हो। पेट ऊपर खींचते हुए ध्वन्यात्मक रेचक करो। प्रत्येक स्थिति में नाक से ही श्वास लेनी चाहिये। इसका सदैव ध्यान रहे। इस प्रकार आठो अङ्ग पृथ्वी पर लाने से यह साष्टांग आसन कहलाता है।

लाभ—ठोड़ी के नीचे और गले के ऊपरी भाग पर दबाव पड़ने से गले की ग्रंथियों को बल मिलता है; जिससे अनेक

रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। कलाइयाँ, बाहु हाथ और घुटने के ऊपरी भाग पर पूरा शरीर संतुलित होता है अतएव इन सभी के जोड़ मजबूत होते हैं। पेट को भीतर खींचने और नितम्बों को ऊपर उठाने से, उदर विकार नष्ट होते हैं और नितम्ब-स्नायु पुष्ट और बलिष्ट बनते हैं।

छठा आसन—कशेरुसंकोच
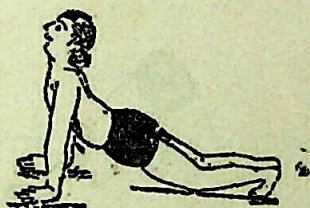
पाँचवीं स्थिति में रहकर जमीन पर लगा हुआ मस्तक और छाती धीरे-धीरे ऊपर उठाओ। ध्वनि युक्त पूरक करके छाती सामने की ओर लाओ। पीठ झुकाओ। मस्तक को पीछे पीठ की ओर ले जाओ, स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखो और कुम्भक करो।

लाभ—कंठ ग्रंथियों, गला, गर्दन, भुजा, पेट और पीठ के स्नायु मंडल का व्यायाम इस आसन से होजाता है। फेफड़ों में विकार होने का भय नहीं रहता, छाती चौड़ी और भरी बनती है। उक्त अवयवों की मांस-पेशियाँ दृढ़ और सुडौल बनती हैं। मेद कम होता है और तोंद आगे नहीं निकलने पाता

तिल्ली, जिगर और उदर के विकार समूल नष्ट हो जाते हैं। कण्ठमाला के रोगियों को भी इस व्यायाम से लाभ पहुँचा है। मेरुदण्ड के मुड़ने से उसकी ग्रंथियों का व्यायाम होजाता है, जिसके प्रभाव से ज्ञान तन्तु बलिष्ठ बनते हैं और मस्तिष्क तीव्र होजाता है।

सातवाँ आसन—कशेरुविकसन
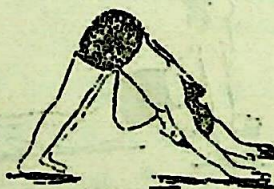
शिर और छाती को हाथों के बीच में से लाते हुए चौथे आसन की स्थिति में आना चाहिये। कुम्भक रखते हुए पैर सीधे करो। हथेलियाँ वैसी ही स्थित रहें। दोनो बाहु सीधे एवं कुछ झुके हुए रहें। दोनों हाथों के बीच में मस्तक को लाकर धीरे-धीरे ठोड़ी से छाती को स्पर्श करो, पेट भीतर खींचते हुए रेचक करो एड़ियाँ जमीन में लगा दो। पैर सीधे रखकर यथासम्भव कुम्भक करो।

लाभ—इस आसन से हाथ की कलाइयाँ, पंजे, भुजाएँ, गला, गर्दन, पीठ, पेट, कमर, पिंडलियाँ और पैरों का व्यायाम होता है,

जिससे यह सभी अवयव सुदृढ़ होते हैं और रक्त संचालन की तीव्रता से इनकी नस नाड़ियों में रुका हुआ विषाक्त तत्त्व शुद्ध होजाता है। छठे आसन में मेरुदण्ड मुड़ने से संकुचित होती है और इस आसन के तनाव से विकसित होती है। इस प्रकार संकोच और तनाव का प्रभाव मेरुदण्ड की ग्रन्थियों पर पड़ने से अनेक रोगों के कीटाणु नष्ट होजाते हैं, क्षयरोग (तपेदिक) का भय नहीं रहता। मस्तिष्क बलिष्ठ बनता है स्मरण शक्ति तीव्र होजाती है। सहनशीलता, धैर्य, क्षमा आदि दैवी गुणों का विकास होता है।

आठवाँ आसन—ऊर्ध्वेक्षण
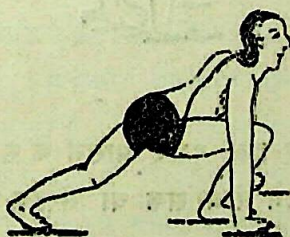
पृथ्वी से एड़ी उठाकर भुजाओं को एक सीध में लाकर एक पैर आगे लाओ। उससे बीच में जमीन न छूकर हथेलियों की सीध में रखो। हाथ के भीतर से पैर का घुटना सामने लाओ। पूरा तलवा जमीन में लगाओ। दूसरे पैर का घुटना पृथ्वी पर

लगा कर तीसरे आसन के अनुसार सिर पीछे ले जाकर आकाश की ओर देखो। पीठ और कमर झुकाकर कुम्भक करो।

लाभ—इस आसन का लाभ प्रायः दूसरे आसन के ही समान होता है।

नवाँ आसन—जानुनास

यह आसन बिल्कुल दूसरे आसन के समान ही है। पेट भीतर खींचकर घुटने में नासिका या मस्तक लगाने पर ध्वनि युक्त रेचक करो।
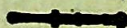
दसवाँ आसन—अवस्थान

ध्वनियुक्त पूरक करके प्रथम आसन के समान खड़े हो जाओ। खड़े रहने तक घुटने एक दूसरे से चिपके हुए सीधे हों, झुके न रहें।

लाभ—इस आसन का लाभ भी प्रायः प्रथम आसन के समान ही होता है, इस प्रकार यह दसों आसन मिलकर पूरा एक नमस्कार कहलाता है। प्रारम्भ काल में प्रत्येक आसन में थोड़ा समय लगावें। बाद में धीरे-धीरे क्रम से समय बढ़ाते जावें। व्यायाम करते समय अपनी भावनाएँ बहुत शुद्ध रखनी चाहिये, शरीर के जिस अवयव पर व्यायाम का प्रभाव पड़े उसमें भावना करें कि इस अंग में शुद्ध रक्त का संचालन हो रहा है। दृढ़ भावना के परिणाम बहुत सुन्दर होते हैं।

सूर्य नमस्कार से मानसिक बल की वृद्धि

हमारे मन की शक्ति अपार है। उसकी शक्ति का अनुभव लगाना कठिन है; किन्तु उसकी शक्तियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से सदुपयोग हो, तो मानव का उत्थान होता है। इसके विपरीत यदि उन शक्तियों का दुरुपयोग हुआ, तो पतन के गम्भीर गह्वर में गिरना भी अवश्यम्भावी है। मनुष्य के प्रत्येक कार्य में उसका मनोबल अथवा इच्छा-शक्ति ही कारण रूप से छिपी रहती है, इसके बिना कोई भी कार्य पूर्णरूपेण फलदायी नहीं हो सकता। सूर्यनमस्कार के व्यायामों की प्रक्रिया में मानसिक-बल-वृद्धि के साधन सरलता से बन सकते हैं। अतएव व्यायाम करते समय यह निश्चय दृढ़ता से करना चाहिये कि 'सूर्यनमस्कार से अथवा इस आसन से निश्चय ही मेरा स्वास्थ्य बहुत सुन्दर हो जायगा, भविष्य में किसी प्रकार का रोग मेरे शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकता। दिन प्रति दिन मेरे विचार भव्य बनते जा रहे हैं, अब मेरे द्वारा कभी किसी का अहित नहीं होने पावेगा। मेरे भीतर नित्य दैवी गुणों का समावेश होता जा रहा है, इत्यादि।" इस प्रकार के शुभ संकल्पों के नित्य अभ्यास से शीघ्र ही आप अपने में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन का अनुभव करने लगेंगे। चित्त की एकाग्रता और इच्छाशक्ति का प्रभाव उस समय शरीर और मन

पर बहुत अच्छा पड़ता है। यदि व्यायाम के समय हमारा मन इधर-उधर भटकता है, चित्त चञ्चल रहता है तो विशेष लाभ नहीं हो सकता। अन्य प्रकार के व्यायाम या खेल-कूद में तो ऐसी भावना रहती है कि हमें अपने प्रदर्शन से दूसरों को चकित कर देना है, अथवा दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त करनी है। किन्तु सूर्य नमस्कार या आसन के व्यायाम में तो मन की आँखों के सामने यही लक्ष्य रहता है कि हम स्वस्थ, सबल और दीर्घायु हों।

चंचल और अस्थिर मन से सूर्य नमस्कार या आसन करने से अथवा दैनिक नियम की पूर्ति करने मात्र से शरीर को आंशिक लाभ तो अवश्य होगा; किन्तु जैसा होना चाहिये वैसा पूर्ण रूप से नहीं होगा। अतएव इस सम्बन्ध में सावधानी की विशेष आवश्यकता है। मनस्ताप, रोग, दुःख आदि विषमताओं का प्रतिकार मन की एकाग्रता और शुभ संकल्पों पर अधिक निर्भर करता है। अस्थिर चित्त के व्यायाम अथवा परिश्रम से शारीरिक शक्ति तो बढ़ सकती है किन्तु मानसिक सजीवता, सुडौलपन और सद्‌गुणों का समावेश नहीं हो सकेगा। अस्तु पूर्ण लाभ के लिये मनोबल अथवा इच्छाशक्ति का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होगा।

सूर्य नमस्कार के मन्त्र

शारीरिक के साथ ही साथ मानसिक आरोग्यता के लिये भी हमारे योगपारंगत ऋषि महर्षियों ने प्रणव और बीजाक्षर-संयुक्त मन्त्रोच्चारण सहित सूर्य नमस्कार करने का आदेश दिया है। उच्च स्वर से मन्त्रोच्चारण करने से मानसिक, शारीरिक एवं दैविक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। अतः सूर्य नमस्कार के समय निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण उच्च स्वर से अवश्यमेव करना चाहिये। मन्त्रोच्चारण प्रत्येक सूर्य नमस्कार के प्रथम (अवस्थान) आसन के पूर्व करना चाहिये—

सूर्य नमस्कार के मन्त्र यह हैं—

१—ॐ ह्राँ मित्राय नमः।

२—ॐ ह्रीं रवये नमः।

३—ॐ ह्रूँ सूर्याय नमः।

४—ॐ ह्रैं भानवे नमः।

५—ॐ ह्रौं खगाय नमः।

६—ॐ ह्रः पूष्णे नमः।

७—ॐ ह्राँ हिरण्यगर्भाय नमः।

८—ॐ ह्रीं मरीचये नमः।

९—ॐ ह्रूँ आदित्याय नमः।

१०—ॐ ह्रैं सवित्रे नमः।

११—ॐ ह्रौं अर्काय नमः।

१२—ॐ ह्रः भास्कराय नमः।

१३—ॐ ह्रां ह्रीं मित्ररविभ्याम् नमः ।

१४—ॐ ह्रूं ह्रैं सूर्यभानुभ्याम् नमः।

१५—ॐ ह्रौं ह्रः खगपूषभ्याम् नमः ।

१६—ॐ ह्रां ह्रीं हिरण्यगर्भमरीचिभ्याम नमः।

१७—ॐ ह्र ह्रैं आदित्यसवितृभ्याम् नमः।

१८—ॐ ह्रौ ह्रः अर्कभास्कराभ्याम् नमः ।

१९—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः ।

२०—ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं खगपूषहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः।

२१—ॐ ह्रं ह्रैं ह्रौं ह्रः आदित्यसवित्रर्क भास्करेभ्यो नमः।

२२— }
२३— } ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः।
२४— } मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः।

२५— ॐ श्री सवित्रे सूर्यनारायणाय नमः।

सूर्य-नमस्कारों से लाभ

यद्यपि प्रत्येक व्यायाम के लाभ संक्षिप्त रूप में प्रत्येक क्रिया के साथ बताये गये हैं, फिर भी उन्हें भली भाँति हृदयङ्गम करने के लिये निम्न तालिका अधिक उपयोगी रहेगी।

१—उदर विकार, यकृत, प्लीहा के विकार समूल नष्ट हो जाते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है और मलावरोध या कोष्ट-बद्धता नहीं रहती।

२—मानसिक विकार, चित्त की चचंलता, उकताहट, दीर्घसूत्रता और आलस्य का अभाव हो जाता है। मज्जा तन्तु बलिष्ठ बनते हैं। दैवी सद्गुणों का समावेश होता है।

३—रक्त का संचालन शुद्ध रीति से होने के कारण, फेफड़े शुद्ध होजाते हैं, हृदय मजबूत बनता है। रुधिर विकार नष्ट होता है। शारीरिक स्वास्थ्य का मुख्य कारण समाभिसरण पर ही अवलम्बित है। फेफड़ों में विपुल प्राणवायु का संचार होने से क्षय रोग का भय नहीं रहता।

४—मांस पेशियाँ सुडौल बनती हैं। गला और गर्दन के संकुचन और प्रसरण से कंठ-ग्रन्थियाँ समर्थ बनती हैं। इन ग्रन्थियों में मनुष्य के उत्साह और सौन्दर्य का रहस्य छिपा रहता है। शरीर में व्यर्थ के मांस का बढ़ना रुक जाता है।

५—त्वचा और शारीरिक कांति में सुधार होता है। आन्तरिक विकार और अनावश्यक तत्त्व पसीने के रूप में शरीर

से बाहर निकल जाते हैं। यदि सूर्य भगवान की बाल रश्मियों के सेवन का भी नियम बना लिया जाय तो त्वचा के छिद्रों से अद्भुत जीवन-शक्ति शरीर में प्रविष्ट होती है।

६—मेरुदण्ड का पर्याप्त व्यायाम होजाने से उसकी ग्रन्थियों के अवरुद्ध विकार नष्ट होजाते हैं। पीठ, कमर, जाँघ, घुटने, बलिष्ठ बनते हैं। पीठ बलवान हो तो मूत्रविकार भी नहीं होता।

७—स्त्रियों को इस व्यायाम से बहुत लाभ होता है। नियमित सूर्यनमस्कार करने से स्त्रियों के गर्भाशय पुष्ट और गर्भ-पिण्ड बलवान बनते हैं। मासिक धर्म के विकार नष्ट हो जाते हैं। बच्चों वाली माताओं का दूध निर्दोष होजाता है। प्रसव-वेदना का कष्ट उन्हें दुखदायी नहीं होता, सुगमता से गर्भस्थ शिशु का जन्म होता है तथा उनकी सन्तान तेजस्वी, सुन्दर और सद्गुण-सम्पन्न होती है।

८—स्त्री या पुरुष के बाह्य शरीरिक अवयव सुन्दर और सुडौल तो बन ही जाते हैं, साथ ही शरीर का आन्तरिक स्वास्थ्य भी सुन्दर बन जाता है। सभी इन्द्रियाँ सबल और कार्यक्षम बन जाती हैं।

९—जीवन के अन्त तक यौवन और जवानी का उत्साह बनाये रखने के लिये सूर्यनमस्कार की प्रणाली अमोघ अस्त्र है। वृद्धावस्था में जवानी की उमंग का स्थिर रहना एक वरदान के समान ही समझना चाहिये। लोक और परलोक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति सूर्यनमस्कार में सन्निहित है।

१०—शारीरिक, सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक बल की प्राप्ति के लिये सूर्यनमस्कार एक प्रमुख साधन सिद्ध हुआ है।

११—आशावाद, स्मरण-शक्ति, आत्मविश्वास और आस्तिक भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

१२—पापाचरण से विरक्ति और सदाचरण से अनुराग होजाता है।

सूर्यनमस्कार के लाभ संक्षिप्त रूप से ऊपर बताये गये। इनका अनुभव तो दृढ़ निश्चय पूर्वक करने से स्वयं ही हो सकता है। सूर्यनमस्कार के प्रत्यक्ष लाभ अपने अपने अनुभव के आधार पर बहुत लोगों ने लिखे और बताये। उन सबका उल्लेख करके पुस्तक का कलेवर बढ़ाना हमारा उद्देश्य नहीं है। वास्तव में किसी अनुकरणीय बात तो केवल जान लेने या समझ लेने मात्र से ही लाभ नहीं होता, उसका असली लाभ तो उसे अपने जीवन में तदनुसार उतार लेने से ही हो सकता है। अतएव मेरी सभी पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक के द्वारा अथवा किसी अनुभवी सज्जन के द्वारा आसन और सूर्य-नमस्कार को भली भाँति समझें और उन्हें क्रिया रूप में परिणत करके अपने मानव जीवन को सर्वांग सुन्दर बनावें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

[illegible] द्वारा प्रकाशित अनुपम पुस्तकें:—

[illegible] स्वामी भजनानन्द सरस्वती जी महाराज

[illegible]माला (पाँचों भाग) २.००

२—[illegible]णिमाला छठा सातवाँ आठवाँ प्रत्येक २.००

३—भजनामृत प्रवाह २.००

श्री स्वामी सदानन्द सरस्वती जी महाराज

४—परमार्थ-बिन्दु (दोनों भाग) — — २.००

लेखक—श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी महाराज

५—प्रवचन प्रकाश (श्री रामजीवन चौधरी) ... १.५०

लेखक—श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज ब्रह्मावर्त बिठूर

६—सुख दर्शन २.००

७—शान्ति दर्शन २,००

८—भक्ति दर्शन १.५०

९—जीवन ज्योति २.००

१०—पूर्ण सुख शान्ति के उपाय ... ... .२५

लेखक—वाणी-विशारद कीर्तन कलानिधि श्री "मंजुल" जी महाराज

११—संकीर्तन सुधा १.००

१२—समस्या-सुमन दोनों भाग १.००

१३—प्रेमी प्रह्लाद ... ...[illegible]५

१४—भक्त भावना १.००

१५—वामन बावनी ... ... .५०

१६—भगवान की ओर [भक्त गाथाएँ] रामस्वरूप गुप्त १.५०

१७—योगरसायन (श्री स्वामी सनातनदेव जी) ... १.२५

[illegible]—योगासन चार्ट ... ... .२५

१९—प्रार्थना छोटी ... ... .१०

२०—प्रार्थना चार्ट ... ... .२५

२१—आदर्श वाक्य हिन्दी व अँग्रेजी ... ... .१०

२२—जीवन झाँकी २.००

२३—मधुर माधुरी [प्रथम भाग] २.००

२४— „ [द्वितीय भाग] १.५०

दोनों भाग सजिल्द ४.००

२५—शिव महिम्नस्त्रोत्र ... ... .५०

२६—सांख्य तत्व विवेचन स्वामी विद्यानन्द जी महाराज २.००

२७—अद्वैत दर्शन स्वामी गोविन्दानन्द जी महाराज ३.००

मुद्रक—परमार्थ प्रेस, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर